सिद्धों की सन्धा भाषा

(Siddhon Ki Sandha Bhasha)

सिद्धों की सन्धाभाषा

लेखक
डॉ० मगलबिहारी शरण सिन्हा

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-८००००३

प्रस्तावना

शिक्षा सबधी राष्ट्रीय नीति-सकल्प के अनुपालन के क्रम मे विश्व-विद्यालयों मे उच्चतम स्तरो तक भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओ मे विभिन्न विषयो के मानक ग्र थो के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अतर्गत अग्रेजी और अन्य भाषाओ के प्रामाणिक ग्र थो का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्र थ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अशत केंद्रीय अभिकरणों द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यो मे इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार मे इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रथ अकादमी के तत्त्वावधान मे हो रहा है।

योजना के अतगत प्रकाश्य ग्र थो मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है ताकि भारत की सभी शैक्षणिक सस्थाओ म समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्र थ सिद्धों की सधाभाषा डा० मगलबिहारी शरण सिन्हा की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण मत्रालय के शत प्रतिशत अनुदान स बिहार हिंदी ग्र थ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्र थ विश्वविद्यालय स्तर क विद्यार्थियो के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्र थो के प्रकाशन सबधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जाएगा।

पटना,
दिनाक ३ १२-७३

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रथ अकादमी

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ सिद्धो की सधाभाषा स्व० डॉ० मगलबिहारी शरण सिन्हा की मौलिक कृति है, जो सुदीर्घ काल तक लेखक के गभीर अध्ययन और अनुसधान का फल है। स्व० डॉ० मगलबिहारी शरण सिन्हा भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ अध्येता थे और मगध विश्वविद्यालय हिंदी विभाग म अध्यापक थे। उनकी यह पुस्तक हिंदी-क्षेत्र के सभी विश्वविद्यालयो के भाषाविज्ञान के छात्रों के लिए अत्यत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य के अथवा वज्रयानी बौद्ध साहित्य के विद्यार्थी भी इस ग्रंथ से लाभ उठा सकेंगे।

इस ग्रथ का मुद्रण 'पटना वीकली नोटस प्रेस', एम० पी० सिन्हा रोड, कदमकुआँ म हुआ है, प्रूफ सशोधन श्री श्रीरजन सूरिदेव ने किया है, इसके आवरण-शिल्पी तथा आवरण मुद्रक नेशनल ब्लॉक एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स हैं, ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

पटना,
दिनाक २-१२ ७३

निदेशक
बिहार हिंदी ग्रथ अकादमी
पटना ३

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

ध्वनि-विचार

१. स्वर
२. व्यंजन

ध्वनि-विचार

मध्याभाषा मे, देवनागरी-लिपि मे अंकित की जाने वाली निम्नांकित ध्वनियाँ उपलब्ध होती हैं

मूल स्वर—अ, आ, इ, ई, उ तथा ऊ,

ए (ह्रस्व), ए (दीर्घ), ओ (ह्रस्व), ओ (दीर्घ)[1]

संधि स्वर—ऐ तथा औ।

स्पर्श-व्यंजन, जो निम्नांकित पाँच वर्गों मे रखे जा सकते हैं :

कण्ठ्य – क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य—च्, छ्, ज्, झ्, ञ्

मूर्धन्य—ट्, ठ्, ड्, ड़्, ढ्, ढ़्, ण्

दन्त्य—त्, थ्, द्, ध्, न्

ओष्ठ्य—प्, फ्, ब्, भ्, म्

अन्तःस्थ वर्ण—य्, र्, ल्, व्

ऊष्म वर्ण—श्, ष्, स् और ह्।

मध्याभाषा मे दीर्घ मूल स्वरो का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। दीर्घ स्वर व्यंजनहीन स्वतन्त्र वर्ण के रूप मे मध्याभाषा मे नहीं मिलता, परन्तु मात्रा के रूप मे दीर्घ ई ध्वनि का प्रयोग हुआ है। जैसे .

इन्दीअ[2]

---

१. संस्कृत मे ए तथा ओ सन्धिस्वर माने गए हैं, पर हिन्दी तथा उसके पूर्व मध्याभाषा मे ये ध्वनियाँ मूल स्वरो की भाँति उच्चरित होती है। अतः, यहाँ उन्हे मूल स्वरो की श्रेणी मे ही रखना संगत प्रतीत होता है।

२. दे० बागची, प्र० च० दोहाकोश, प्रथम भाग, कलकत्ता-संस्कृत-सीरिज, सं० २५—सी, प्रथम संस्करण, १९३८, पृ० ३, पद सं०-५।

गीत[1],
चीअ[2],
जीव[3],
मीस[4] इत्यादि।

दीर्घ ऊ स्वर का भी, स्वतन्त्र वर्ण के रूप मे, प्रयोग सन्धाभाषा मे बहुत कम मिलता है, परन्तु मात्रा के रूप मे यह दीर्घ ध्वनि स्वतन्त्र वर्ण की अपेक्षा कुछ अधिक अश मे सुलभ होती है। जैसे :

कूव[5],
मूअ[6],
मूल[7] इत्यादि।

इस प्रकार, सन्धाभाषा मे एकमात्र 'आ' ही ऐसा दीर्घ स्वर है, जो व्यजनहीन स्वतन्त्र वर्ण तथा व्यजनयुक्त दोनो ही रूपो मे प्रयुक्त हुआ है।

ऐ तथा औ सन्धि-स्वरो की स्थिति भी इसी प्रकार की है। दीर्घ ई की भाँति उनका प्रयोग भी स्वतन्त्र वर्ण के रूप मे नही पाया जाता। व्यजन युक्त मात्रा के रूप मे ही ये दोनो ध्वनियाँ सन्धाभाषा मे उपलब्ध होती है। हालाँकि इस रूप मे भी उनका प्रयोग बहुत ही सीमित सख्या म हुआ है। इनका विस्तृत वर्णन यथास्थान आगे दिया गया है।

स्वरों का ऐतिहासिक अध्ययन

सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि अपभ्रश काल की ध्वनियाँ बहुत कुछ प्राकृत कालीन ध्वनियो के समान ही हैं, उनमे केवल क्रमिक ह्रास को

---

१. दे० शास्त्री, ह० प्र० बौद्धगान ओ दोहा, द्वितीय सस्करण, बगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता, चर्या ३३।
२. दे० वही, च० १६।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० १२।
४ दे० वही, पृ० १३, प० ६।
५. दे० वही, पृ० १०, प० ८।
६ दे० वही, पृ० ३, प० १।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४५।

मात्रा अधिक स्पष्ट हो जाती है।[1] प्राकृत की तुलना में अपभ्रंश की ध्वनियों की जो सबसे प्रमुख विशेषता चटर्जी महोदय ने बताई है वह है आ० भा० आ० के दीर्घ अन्त्य स्वरों के ह्रस्व होने की।[2] सन्ध्याभाषा में यह विशेषता तो उपलब्ध होती ही है साथ ही संस्कृत की कुछ ध्वनियाँ भी अपने मूल रूप में सुलभ होती हैं क्योंकि साहित्य रचना के समय सन्ध्याभाषा भी अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक भाषाओं से कुछ तत्सम शब्द ग्रहण कर लेती है।[3]

आदि स्वरों का इतिहास

अपभ्रंश में आ० भा० आ० के आदि स्वर सामान्यतः सुरक्षित रहते हैं, फिर भी उनमें परिवर्तन के कुछ उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[4] आ० भा० आ० के आदि अ, आ, इ, उ तथा ऊ स्वर सन्ध्याभाषा में सुरक्षित हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है[5] दीर्घ ई ध्वनि स्वतन्त्र वर्ण के रूप में सन्ध्याभाषा में उपलब्ध नहीं होती। आदि ए, ओ तथा ऐ औ भी सन्ध्याभाषा में नहीं मिलते। पहले उपलब्ध आदि स्वरों के सुरक्षित रूपों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

---

१. दे० सुनीतिकुमार चटर्जी The Origin and Development of the Bengali Language, भाग १, कलकत्ता-विश्वविद्यालय प्रेस १९२६, भूमिका भाग, पृ० १९।

२ दे० वही।

३ सन्ध्याभाषा जैसी बोलचाल की भाषाओं द्वारा समृद्ध पूर्ववर्ती साहित्यिक भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की प्रवृत्ति के लिए देखिए सु० कु० चटर्जी भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, द्वितीय संस्करण, १९५७, राजकमल प्रकाशन पृ० १४७।

यह प्रवृत्ति और भी बढ़ती है। हिन्दी में संस्कृत की मूल ध्वनियों का प्रचलन इसका प्रमाण है। इसके लिए अवलोकनीय है हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृ० १०।

४ दे० तगारे Historical Grammar of Apabhramsa, पूना १९४८, पृ० ५४।

५ दे० यह अध्याय, पृ० २९ (पीछे)।

आदि अ के सुरक्षित रूप

अ < अ

सन्धाभाषा की आदि अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की आदि अ ध्वनि का ही सुरक्षित रूप है। जैसे

अदुअ[1] < अद्वय अद्दअ (अविनिहिति)
अत्थि[2] < अस्ति अत्थि
अण्ण[3] < अन्य अण्ण
अवस[4] < अवश्यम अवस्स
अब्भतरु[5] < अभ्यन्तर अब्भन्तर
अमिअ[6] < अमृत अमिय अमय (श्रुति ?)
अदभूआ[7] < अदभुत इत्यादि।

आदि आ के सुरक्षित रूप

आ < आ

सन्धाभाषा की आदि आ ध्वनि प्रा० भा० आ० की आदि आ ध्वनि का सुरक्षित रूप है। जैसे

आअतणु[8] < आयतन आअअ (आयत, आगत)
आणन्द[9] < आनन्द आणद
आआस[10] < आयास आयास

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० १२।
२ दे० वही, पृ० १६, प० ७।
३ दे० वही पृ० १६, प० ११।
४ दे० वही, पृ० ३२ प० ७६।
५ दे० वही, पृ० ३५ प० ८८।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० प० २८।
७ दे० वही, प० ३०।
८ दे० बागची दोहाकोश पृ० ? प० १।
९ दे० वही पृ० ५, प० २७।
१० दे० वही, पृ० २९ प० ६५।

आगन[1] < आगम आग्म

आस[2] < आशा आस=भोजन, फेंकना, पत्थ, बैठना इत्यादि।

आइ[3] < आदि आइ

आदि इ के सुरक्षित रूप

इ < इ

सन्धाभाषा की आदि ह्रस्व इ ध्वनि आ० भा० आ० मे इ के रूप मे ही उपलब्ध होती है। जैसे

इच्छ[4] < इच्छया

इन्दी[5], इन्दीअ[6], इन्दिअ[7] < इन्द्रिय।

आदि ह्रस्व इ का अनुनासिक रूप भी उपलब्ध होता है। जैसे

इँदि[8] < इन्द्रिय

आदि उ के सुरक्षित रूप

उ < उ

सन्धाभाषा की आदि उ ध्वनि आ० भा० आ० मे उ के रूप मे ही मिलती है। जैसे

उइअ[9] < उदित

उएस[10] < उपदेश

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ७६।
२. दे० वही, पृ० ४४, प० २५।
३ दे० वही, पृ० २१, प० २७।
४. दे० वही, पृ० ३३, प० ७६।
५ दे० वही, पृ० ३, प० १ तथा पृ० ११, प० १८
६ दे० वही, पृ० ३, प० ५।
७. दे० वही, पृ० २१, प० २६।
८. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ८६।
९ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।
१०. दे० वही, पृ० २०, प० २५।

उवज्जइ[1] तथा उअज्जइ[2] < उत्पद्यते

उवरइ[3] < उपचरति

उज्जोअ[4] < उद्योतन

आदि उ का अनुनासिक रूप भी उपलब्ध होता है । जैसे

ऊँचा[5] < उच्च ।

आदि ऊ के सुरक्षित रूप

ऊ < ऊ

सन्धाभाषा की आदि दीर्घ ऊ ध्वनि आ० भा० आ० मे दीर्घ ऊ के रूप मे मिलती है। इसका केवल एक उदाहरण सन्धाभाषा मे उपलब्ध होता है

ऊह[6] < ऊर्द्ध्व ऊह = विवेक विचार करना, तर्क, स्तन इत्यादि ।

आदि ए के सुरक्षित रूप

ए < ए

सन्धाभाषा की आदि ए ध्वनि आ० भा० आ० के ए से उद्भूत है। जैसे

ऐक्क[7]
एक्कु[8]
एकि[9] } < एक
एकु[10]

आदि स्वरों के परिवर्त्तित रूपों का विवरण

सन्धाभाषा मे आ० भा० आ० के आदि स्वरो मे जो परिवर्तन होते हैं,

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० १६, प० २१ ।
२ दे० वही पृ० २६, प० ५२ ।
३ दे० वही पृ० ३४, प० ८८ ।
४ दे० वही पृ० ३७ प० ९७ ।
५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८ ।
६ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४२ प० १३ ।
७ दे० वही, पृ० ३६, प० ११० ।
८ दे० वही, पृ० ४०, प० १ ।
९ दे० शास्त्री बौ० गा० दो , च० १० ।
१० दे० वही च० ३४ ।

उनमे मुख्यत प्रा० भा० आ० के ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते है तथा दीर्घ स्वर ह्रस्व। आदि स्वर लोप का भी उदाहरण सन्धाभाषा मे प्राप्त होता है।

आदि स्वर लोप

यद्यपि सन्धाभाषा मे प्रा० भा० आ० का आदि आ का स्वर प्राय सुरक्षित रहता है तथापि इसका लोप एक स्थान पर पाया जाता है

कँखा[1] < आकाक्षा

आदि स्वरों का ह्रस्वीकरण

सन्धाभाषा मे प्रा० भा० आ० के बहुत से दीर्घ आदि स्वर ह्रस्व रूप धारण कर लेते हैं। नीचे उनका विवेचन किया जाता है।

आदि अ

अ < आ

सन्धाभाषा की आदि अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की आदि दीर्घ आ ध्वनि का ह्रस्व रूप है। जैसे

अप्पा[2] < आत्मा

अहार[3] < आहार

अ < इ

सन्धाभाषा की आदि अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की दीर्घ ई ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

अइमें[4] < ईदृशेन

आदि उ

उ < ऊ

सन्धाभाषा की आदि ह्रस्व उ ध्वनि प्रा० भा० आ० की आदि दीर्घ ऊ ध्वनि का ह्रस्व रूप है। जैसे

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३७।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ८।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३५।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १४।

उर्ध < ऊर्ध्व

आदि स्वरों का दीर्घीकरण

संधाभाषा में प्रा० भा० आ० के आदि अ तथा उ स्वर कभी कभी क्रमशः अपने दीर्घ रूप आ तथा ऊ में परिवर्तित हो जाते हैं। यहाँ कहीं तो यह परिवर्तन क्षतिपूरक के नियम के अनुसार होता है और कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप में।

क्षतिपूरक दीर्घीकरण के नियमानुसार परिवर्तनों का वर्णन

संधाभाषा की यह विशेषता है कि ह्रस्व आदि तथा मध्यग स्वर के बाद यदि संयुक्त व्यंजन रहते हैं, तो उनमें से एक व्यंजन लुप्त हो जाता है तथा उसकी क्षतिपूर्ति के रूप में क्रमशः ह्रस्व आदि तथा मध्यम स्वर दीर्घ हो जाते हैं।[२]

आदि आ

आ < अ

संधाभाषा की आदि आ ध्वनि प्रा० भा० आ० की अ ध्वनि का दीर्घ रूप है। जैसे

आखि < अक्षि
आगि[३] < अग्नि
आण < अज्ञ
आगलि < अग्र

आदि ऊ

ऊ < उ

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० १० प० ११।
२ दे० तगारे Historical Grammar of Apabhramsa पृ० ४८। तगारे ने इस प्रवृत्ति को अपभ्रंश के केवल आदि स्वरों तक ही सीमित रखा है परन्तु संधाभाषा के मध्यग स्वरों में भी इस प्रवृत्ति के उदाहरण मिलते हैं।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १५।
४ दे० वही च० ४३।
५ दे० वही च० ४४।
६ दे० वही च० १८।

सन्धाभाषा की आदि दीर्घ ऊ ध्वनि आ० भा० आ० की ह्रस्व उ ध्वनि का दीर्घ रूप है। जैसे

ऊअर[1] < उत्पल

मध्यग स्वरो मे क्षतिपूरक दीर्घीकरण का विवेचन यथास्थान आगे किया गया है।[2]

स्वतन्त्र परिवर्तनों का वर्णन

क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम के अतिरिक्त, स्वतन्त्र रूप से सन्धाभाषा के आदि ह्रस्व स्वरो के दीर्घ हो जाने का विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

आदि आ

आ < अ

सन्धाभाषा की आदि आ ध्वनि आ० भा० आ० की आदि अ ध्वनि का दीर्घ रूप है। यह परिवर्तन स्वतन्त्र रूप से भी हुआ है। जैसे

आणुतु[3] < अणुत्तर

आम्हे[4] < अहम्

आदि ऊ

ऊ < उ

सन्धाभाषा की आदि दीर्घ ऊ ध्वनि आ० भा० आ० की आदि ह्रस्व उ ध्वनि का दीर्घ रूप है। जैसे

ऊआर < उपकार[5]

मध्यग स्वरों का इतिहास

सन्धाभाषा के मध्यग स्वर सामान्यत आ० भा० आ० के मध्यग स्वरो के समान ही रहते हैं, फिर भी आ० भा० आ० रूप से उनमे थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाता है। आगे उनका क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २९, प० ६४।

२ दे० यह अध्याय, पृ० ४२ (आगे)।

३. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १६।

४. दे० वही, च० १२।

५. दे० बागची · दोहाकोश, पृ० ३६, प० ११२।

मध्यग अ ध्वनि

अ < अ

सन्धाभाषा की मध्यग अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग अ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

सुरअ[1] < सुरत
आगम < प्राण
ससर[3] < शशहर
तरंग[4] < तरंग
वअण[5] < वचन इत्यादि।

अ < आ

सन्धाभाषा की मध्यग अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग आ ध्वनि का ह्रस्व रूप है। जैसे

परमत्थ[6] < परमार्थ
सिद्धन्त[7] < सिद्धान्त
रसअण[8] < रसायन इत्यादि।

अ < इ

कहीं कहीं सन्धाभाषा की मध्यग अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग इ ध्वनि से उद्भूत होती है। जैसे

पडवेसी[9] < प्रतिवेशी

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २८
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २।
३ दे० वही च० ४१।
४ दे० वही, च० ४२।
५ दे० वही, च० ३९ तथा ४५।
६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० १।
७ दे० वही, पृ० ३३, प० ८०।
८ दे० वही, पृ० २६, प० ५१।
९ दे० पा० टि० ३।

अ < ऋ

विस्तृत विवेचन के लिए ऋ ध्वनि के विवेचन का प्रकरण देखें।[1]

मध्यग आ ध्वनि

आ < आ

सन्धाभाषा की मध्यग आ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग आ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

संसार[2] < ससार

पतवाल[3] < पतवार

सहाव[4] < स्वभाव

णिरास[5] < निराश इत्यादि।

आ < औ

सन्धाभाषा की मध्यग आ ध्वनि प्रा० आ० भा० की औ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

णाव[6] < नौका

आ < अ

विवेचन के लिए आगे मध्यग स्वरों का क्षतिपूरक दीर्घीकरण प्रकरण देखें।[7]

आ < ऋ

विवेचन के लिए ऋ के विवेचन का प्रकरण आगे देखें।[8]

मध्यग इ ध्वनि

इ < इ

सन्धाभाषा की मध्यग ह्रस्व इ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग ह्रस्व इ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

---

१ दे० यह अध्याय पृ० ५७ (आगे)।

२ दे० पा० टि० ३।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३८।

४ दे० वही, च० ४१ और ४३।

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० ७।

६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४६।

७ दे० यह अध्याय, पृ० ४२ (आगे)।

८ दे० यह अध्याय, पृ० ५७ (आगे)।

बोहिचिअ[1] < बोधिचित्त

कुलिग[2] < कुलिश

इ < ऋ

विवेचन के लिए ऋ के विवरण का प्रकरण देखें ।[3]

मध्यग ई ध्वनि

ई < इ

सन्धाभाषा की मध्यग दीर्घ ई ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग ह्रस्व इ का ही दीर्घ रूप है। जैसे

इन्दीअ[4] < इन्द्रिय

मध्यग उ ध्वनि

उ < उ

सन्धाभाषा की मध्यग उ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग उ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

महुअर[5] < मधुकर

करुणा[6] < करुणा

चउट्ठ < चतुर्थ इत्यादि ।

उ < ऊ

सन्धाभाषा की मध्यग ह्रस्व उ ध्वनि प्रा० भा० आ० की मध्यग दीर्घ ऊ ध्वनि का ह्रस्व रूप है। जैसे

सपुण्णा[7] < सम्पूर्ण

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४० प० ३ ।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४७ ।
३ दे० यह अध्याय पृ० ५७ (आगे) ।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३ प० ५ ।
५ दे० वही पृ० ४१, प० ६ ।
६ दे० वही, पृ० ४ प० १२ ।
७ दे० वही, पृ० ३६ प० १६ ।

कापुर[1] < कर्पूर

सरूअ[2] < स्वरूप

उ < अ

सन्धाभाषा की मध्यग ह्रस्व उ ध्वनि आ० भा० आ० की अ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे,

परमेसुरु[3] < परमेश्वर

महेसुर[4] < महेश्वर

पाखुडो[5] < पखडी

दुइ[6] < द्वय

उ < ऋ

विवेचन के लिए आगे ऋ के विवरण का प्रकरण देखें।[7]

मध्यग ऊ ध्वनि

ऊ < ऊ

सन्धाभाषा की मध्यग दीर्घ ऊ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग दीर्घ ऊ ध्वनि का ही रूप है। जैसे,

अवधूती[8] < अवधूती

मध्यग ए ध्वनि

ए < ए

सन्धाभाषा की मध्यग ए ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ए ध्वनि का ही रूप है। जैसे

---

१ दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० २८।
२ दे० वही, च० १०।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३ प० ८१।
४ दे० वही, पृ ६, प० २०।
५. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १०।
६ दे० वही, च० ३ और १४।
७ दे० यह अध्याय, पृ० ५७ (आगे)
८ दे० पा० टि० ८६, च० १७।

उएस[1] < उपदेश

पडवेपी[2] < प्रतिवेशी

महेसुर[3] < महेश्वर

ए < अ

सन्धाभाषा की मध्यग ए ध्वनि आ० भा० आ० के मध्यग अ से उद्भूत है। जैसे

सएल[4] < सकल

ए < ऋ

सन्धाभाषा की मध्यग ए ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ऋ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

नउर[5] < नूपुर

मध्यग ओ ध्वनि

ओ < ओ

सन्धाभाषा की मध्यग ओ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ओ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

तलोए[6] < त्रैलोक्य

णिरोहे[7] < निरोधन

उज्जोअ[8] < उद्योतन

---

१ दे० बागची दोहाकोष, पृ० २०, प० २५।
२ दे० पा० टि० ३।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २०।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १६।
५ दे० वही च० ११।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४२।
७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६६।
८ दे० वही पृ० ३७, प० ६७।

ओ < ऊ

सन्धाभाषा की मध्यग ओ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग दीर्घ ऊ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

सोण[1] < शून्य

तांबोला[2] < ताम्बूल

मध्यग औ ध्वनि

औ < अ

सन्धाभाषा का मध्यग औ सन्धि स्वर आ० भा० आ० के मध्यग अ से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

चौकोटि[3] < चतुष्कोटि

मध्यग स्वरों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम के अनुसार परिवर्तनों का वर्णन

आदि स्वरों की भांति सन्धाभाषा के कुछ ह्रस्व मध्यग स्वर भी क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम के अनुसार दीर्घ हो जाते हैं।[4]

मध्यग आ

आ < अ

सन्धाभाषा का मध्यग दीर्घ आ स्वर आ० भा० आ० के ह्रस्व अ का दीर्घ रूप है। यह परिवर्तन क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम के अनुसार होता है। जैसे

कापूर[5] < कर्पूर

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४६।

२ दे० वही, च० २८।

३ दे० वही, च० ३७।

४ इस नियम के विस्तृत विवेचन के लिए दे० यह अध्याय (पीछे)।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।

मध्यग ई

ई < इ

सन्धाभाषा की मध्यग दीर्घ ई ध्वनि आ० भा० आ० की ह्रस्व इ ध्वनि का दीर्घ रूप है। जैसे·

सीस[1] < शिष्य

अन्त्य स्वरों का इतिहास

प्राकृत के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र ने उल्लेख किया है कि अपभ्रंश के अन्त्य स्वर ह्रस्व होते है।[2] प्राकृत की तुलना म अपभ्रंश की इस विशेषता की ओर चटर्जी[3] के अतिरिक्त तगारे तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।[4] भायाणी ने तो उदाहरणो के आधार पर बताया है कि शुद्ध अपभ्रंश शब्द निश्चित रूप मे ह्रस्वस्वरान्त होते हैं[5], पर प्राकृत तथा अन्य प्रभावो के कारण ही इस निश्चत प्रवृत्ति मे कुछ व्यतिक्रम हो जाता है। सन्धाभाषा मे भी यह देखा जाता है कि उसमें आ० भा० आ० के दीर्घ अन्त्य स्वर प्राय ह्रस्व हो जाते हैं।

अन्त्य स्वरों का ह्रस्वीकरण

अन्त्य अ

अ < आ

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १३, प० ६।

२. दे० Prakrit Grammar of Hemchandra, सम्पादक पी० एल० वैद्य, पूना, १९२८, पृ० १४६।

३. दे० यह अध्याय (पीछे)।

४. दे० तगारे Historical Grammar of Apabhramsa, पूना, १९४८, पृ० ४९ तथा द्विवेदी हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९५२, पृ० ४४।

५ दे० सन्देशरासक, सम्पादक : जिनविजय मुनि तथा हरिवल्लभ भायाणी, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, स० २२, प्रकाशक भारतीय विद्या-भवन, बम्बई, वि० स० २००१, भूमिका, पृ० १८।

सन्धाभाषा का अन्त्य ह्रस्व अ आ० भा० आ० के दीर्घ आ का ह्रस्व रूप है। जैसे

भास[1] < भाषा

करुण[2] < करुणा

वेअन[3] < वेदना इत्यादि।

अन्त्य इ

इ < ई

सन्धाभाषा की अन्त्य ह्रस्व इ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य दीर्घ ई ध्वनि का ह्रस्व रूप है। जैसे

अवधूइ[4] < अवधूती

जुवइ[5] < युवती

रअणि[6] < रजनी इत्यादि।

इ < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य ह्रस्व इ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य दीर्घ आ ध्वनि से उद्भूत प्रतीत होती है। जैसे ·

सेजि[7] < शय्या

इ < ऋ

विस्तृत विवेचन के लिए ऋ के विवरण का प्रकरण देखें।[8]

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १६, प० २१।

२ दे० वही, पृ० ३, प० २।

३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।

४. दे० वही, च० २७।

५ दे० बागची · दोहाकोश, पृ० १६, प० ७।

६. दे० वही, पृ० ४५, प० २६।

७. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० २८।

८. दे० यह अध्याय (आगे)।

अन्त्य इ

इँ < आ

अन्त्य इ की भाँति ही सन्धाभाषा की अन्त्य अनुनासिक ह्रस्व इँ ध्वनि आ० भा० आ० की दीर्घ आ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

मयि[1] < मया

अन्त्य उ

उ < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य ह्रस्व उ ध्वनि आ० भा० आ० के अन्त्य दीर्घ आ से उद्भूत है। जैसे

वेअणु[2] < वेदना

अन्त्य ए

ए < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य एँ ध्वनि आ० भा० आ० की दीर्घ आ ध्वनि से निकली है। जैसे

जव्वें[3] < यदा

अन्त्य स्वरों का दीर्घीकरण

यद्यपि सन्धाभाषा की प्रवृत्ति अन्त्य दीर्घस्वरों के ह्रस्वीकरण की है, तथापि आदि तथा मध्यग स्वरों की भाँति, अन्त्य ह्रस्व स्वर भी दीर्घ रूप धारण कर लेते हैं। कहीं कहीं तो यह परिवर्तन गेयता के कारण होता है[4] तथा कहीं कहीं क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियम के अनुसार।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४६, प० ३१।

२ दे० वही पृ० ३२, प० ७५।

३ दे० वही पृ० २५, प० ४६।

४ सन्धाभाषा की यह गेयता संस्कृत की उस पाठ शैली से प्रभावित है, जिसमें अन्त्य ह्रस्व स्वर दीर्घ उच्चरित होते हैं। इस सम्बन्ध में दे० बाबूराम सक्सेना कीर्तिलता, काशी-नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय संस्करण, २०१० वि०, पृ० २७।

गेयता के कारण हुए परिवर्त्तनों का वर्णन

अन्त्य आ

आ < अ

सन्धाभाषा का अन्त्य आ स्वर आ० भा० आ० के अन्त्य अ का दीर्घ रूप है। जैसे

जिणउरा[१] < *जिनपुर*
सुआ[२] < सुत
चोरा[३] < चोर
मणा[४] < मन
देवा[५] < देव
गअणा[६] < गगन
निर्वाणा[७] < निर्वाण इत्यादि।

अन्त्य ई

ई < इ

सन्धाभाषा का अन्त्य दीर्घ ई स्वर आ० भा० आ० के अन्त्य ह्रस्व इ स्वर का दीर्घ रूप है। जैसे

शशी[८] < शशि

---

१ दे० *शास्त्री बौ० गा० दो०*, च० १४।
२ दे० वही, च० ४१।
३. दे० वही, च० ४।
४ दे० वही, च० ४६।
५ दे० *बागची दोहाकोश*, पृ० ६, प २०।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।
७ दे० वही, च० २२।
८ दे० वही, च० ११।

क्षतिपूरक दीर्घीकरण-नियम के अनुसार परिवर्त्तनों का वर्णन

अन्त्य आ

आ < अ

सन्धाभाषा के कुछ आकारान्त शब्द ऐसे हैं, जिनके आ० भा० आ० रूपों के अन्त्य स्थान में आए हुए अकारान्त संयुक्त व्यंजनों से एक वर्ण लुप्त हो जाता है तथा उसकी क्षति-पूर्त्ति के रूप में अन्त्य अ स्वर आ में परिवर्तित हो जाता है। जैसे

गुमा[1] < गुल्म

रअणा[2] < रत्न

हथा[3] < हस्त

चका[4] < चक्र

रन्धा[5] < रन्ध्र इत्यादि।

दूसरे तथा तीसरे उदाहरणों में क्रमश मूर्द्धन्यीकरण तथा महाप्राणीकरण के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। अन्तिम उदाहरण में तीन वर्णों के संयोग के कारण एक के लोप होने पर दो संयुक्त वर्णों की स्थिति बनी रहती है।

सन्धाभाषा की प्रवृत्ति के उपर्युक्त विवेचन के बाद नीचे अन्त्य स्वरों का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

अन्त्य अ का इतिहास

अ < अ

सन्धाभाषा की अन्त्य अ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य अ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

पाअ[6] < पाद

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १५।

२. दे० वही, च० ४३।

३. दे० वही, च० ४१।

४. दे० वही, च० १८।

५. दे० बागची दोहाकोश पृ० ११, प० १४।

६. दे० पा० टि०, १३४।

णीर[1] < नीर

विराअ[2] < *विराग*

पाथर[3] < प्रस्तर

पावत[4] < पर्वत इत्यादि ।

अ < आ

विस्तृत विवेचन अन्त्य स्वरों के ह्रस्वीकरणवाले प्रकरणों में पीछे देखें।[5]

अ < इ

सन्धाभाषा की अन्त्य अ ध्वनि प्रा० भा० आ० की इ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

पइसअ[6] < प्रविशति

तुरअ[7] < *त्रुट्यति इत्यादि।*

अन्त्य आ का इतिहास

आ < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य आ ध्वनि प्रा० भा० आ० की आ ध्वनि का रूप है। जैसे

आसा[8] < आशा

बम्हा[9] < ब्रह्मा

वासणा[10] < *वासना*

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० ४।

२. दे० वही, पृ० ३४, प० ८५।

३. दे० पा० टि०, १३३।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।

५. दे० यह अध्याय (पीछे)।

६. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० ३६।

७. दे० वही च० २१।

८. दे० वही, च० ४५।

९. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २०।

१०. दे० पा० टि०, १३३।

साहा[1] < शाखा

जाला[2] < ज्वाला

छाआ[3] < छाया

जउना[4] < यमुना इत्यादि।

वा < व

विस्तृत विवेचन के लिए अन्त्य स्वरों के दीर्घीकरण का खण्ड देखें।[5]

अन्त्य इ का इतिहास

इ < इ

सन्धाभाषा की अन्त्य इ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य इ ध्वनि का रूप है। जैसे

निसि[6] < निशि

बोहि[7] < बोधि

सिठि[8] < सृष्टि

धनि[9] < ध्वनि

मुणि[10] < मुनि इत्यादि।

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४५।

२. दे० वही, च० ४७।

३. दे० वही, च० ४६।

४. दे० वही, च० १४।

५. दे० यह अध्याय (पीछे)।

६. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २१।

७. दे० वही, च० ५।

८. दे० पा० टि०, १५०।

९. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १७।

१०. दे० बागची : दोहाकोष, पृ० ४४, प० २५।

इ < अ

सन्धाभाषा की अन्त्य ह्रस्व इ ध्वनि आ० भा० आ० की अ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे :

अन्धारि[1] < अन्धकार

धूलि[2] < धूल

निति[3] < नित्य इत्यादि।

इ < ई

विस्तृत विवेचन के लिए अन्त्य स्वरों का ह्रस्वीकरण प्रकरण देखें।[4]

अन्त्य ई का इतिहास

ई < ई

सन्धाभाषा की अन्त्य दीर्घ ई ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य ई ध्वनि का रूप है। जैसे :

वैरी[5] < वैरी

सामी[6] < स्वामी

नइरी[7] < नगरी

घरिणी[8] < गृहिणी इत्यादि।

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ५०।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१, प० ७३।
३. दे० पा० टि०, ३।
४. दे० यह अध्याय (पीछे)।
५. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।
६. दे० वही, च० ५।
७. दे० वही, च० ४१।
८. दे० वही, च० २८।

ई < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य दीर्घ ई ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य आ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

नावी[1] } < नौका
णावी[2]

ई < इ

विस्तृत विवेचन के लिए अन्त्य स्वरों का दीर्घीकरणवाला प्रकरण देखें।[3]

अन्त्य उ का इतिहास

उ < उ

सन्धाभाषा की अन्त्य उ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य उ ध्वनि का रूप है। जैसे

मरु[4] < मरु

मेरु[5] < मेरु

बिन्दु[6] < बिन्दु

धाउ[7] < धातु

तरु[8] < तरु इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ८।

२ दे० वही, च० १३।

३ दे० यह अध्याय (पीछे)।

४ दे० पा० टि०, १६३।

५ दे० पा० टि०, १८८।

६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३२।

७ दे० वही, च० २८।

८ दे० वही, च० ५।

उ < अ

मध्यभाषा को अन्त्य उ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य अ ध्वनि से निकली है।[1] जैसे

पउ[2] < पद

फलु[3] < फल

रसु[4] < रस

परमेसरु[5] < परमेश्वर

तणु[6] < तन

जलु[7] < जल

जोउ[8] < योग इत्यादि।

उ < अ

मध्यभाषा को अन्त्य उ ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य इ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

माहिउ[9] < माधयति।

---

१ उकारान्त शब्द ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है, जिसे ग्रियर्सन ने स्टैण्डर्ड ब्रजभाषा कहा है वह अउ प्रत्यय को ही पसन्द करती है। ब्रजभाषा मे उ प्रत्ययान्त शब्दो की प्रधानता का कारण पश्चिमी अपभ्रंश का प्रभाव है, इसे चटर्जी ने 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' की भूमिका मे दिखाया है। दे० Grierson, G A Linguistic Survey of India, vol. IX, Part I, पृ० ६९—७२ तथा दामोदर उक्तिव्यक्तिप्रकरण, भारतीय विद्याभवन बम्बई, १९५३ ई०, भूमिका, पृ० ४०।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३८, प० १०६।

दे० वही, पृ० ३८, प० १०८।

४. दे० वही, पृ० २७, प० ५६।

५ दे० वही, पृ० २७, प० ५८।

६ दे० वही, पृ० २५, प० ४६।

७ दे० वही पृ० ३१, प० ७२।

८. दे० वही, पृ० २६, प० ५४।

९. दे० वही, पृ० १७, प० १३।

अन्त्य ऊ ध्वनि

सन्धाभाषा मे अन्त्य दीर्घ ऊ ध्वनि के अभाव के कारण उसके इतिहास के सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता ।

अन्त्य ए का इतिहास

ए < ए

सन्धाभाषा की अन्त्य ए ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य ए ध्वनि का रूप है । जैसे

घरे घरे[1] < गहे गृहे

पढमे[2] < प्रथमे

कहीं कही अन्त्य ए ध्वनि अपने अनुनासिक रूप मे भी मिलती है । जैसे

घरें घरें[3]

ए < इ

सन्धाभाषा की अन्त्य ए ध्वनि आ० भा० आ० की ह्रस्व इ ध्वनि से उद्भूत है । जैसे

कहिए[4] < कथयति

हरए[5] < हरति इत्यादि ।

ए < अ

सन्धाभाषा की अन्त्य ए ध्वनि आ० भा० आ० की अन्त्य अ ध्वनि से उद्भूत है । जैसे

पाडिआचाए[6] < पण्डिताचार्य

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३२, प० ७८ ।
२ दे० वही, पृ० ३५, प० ९० ।
३ दे० वही पृ० ३३ प० ८० ।
४ दे० वही पृ० ४१ प० १० ।
५ दे० वही पृ० ३७ प० ९७ ।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० २६ ।

जउतुके[1] < यौतुक

तउसे[2] < तादृश ।

अन्त्य ओ का इतिहास

ओ < :

सन्धाभाषा की अन्त्य ओ ध्वनि प्रा० भा० आ० की विसर्ग ध्वनि से उद्भूत है।[3] जैसे :

णाहो[4] < नाथ

सिद्धो[5] < सिद्धः

ओ < अ

सन्धाभाषा की अन्त्य ओ ध्वनि प्रा० भा० आ० की अन्त्य अ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

शवरो[6] < शबर

तत्तो[7] < तत्त्व

तइसो[8] < तादृश इत्यादि।

अन्त्य ओ का अनुनासिक रूप ओं भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है। जैसे

तइसों[9]।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १६।
२. दे० वही, च० २६।
३ दे० हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृ० १५।
४ दे० पा टि०, १८८।
५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४३, प० १९।
६. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ५०।
७. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२।
८. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३२।
९. दे० वही, च० १३।

ह्रस्व ए तथा ह्रस्व ओ का विवेचन

सन्धि स्वरों में क्रमिक विकास की प्रवृत्ति के कारण, ह्रस्व ए तथा ह्रस्व ओ, दो नए स्वर प्राकृत काल में मिलने लगते हैं।[1] अपभ्रंश काल में भी उच्चारण की यह विशिष्टता वर्तमान रहती है। अपभ्रंश के द्वयक्षरात्मक शब्दों की आदि अक्षरगत ए तथा ओ ध्वनियाँ सामान्यतः दीर्घ उच्चरित होती हैं पर यदि अन्तिम वर्ण संयुक्ताक्षर रहा, तब ये ध्वनियाँ ह्रस्व के रूप में उच्चरित होती हैं।[2] सन्धाभाषा में भी अपभ्रंशकालीन यह विशेषता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। निम्नांकित द्वयक्षरात्मक शब्दों में आदि अक्षरगत ए ध्वनि दीर्घ रूप में उच्चरित होती है

सेना[3]
केलि
वेअ[4]
देस[5] इत्यादि।

परन्तु, खेत्त[6] तथा एक्कु[7] में आदि अक्षरगत ए ध्वनि ह्रस्व के रूप में उच्चरित होती है।

निम्नांकित द्वयक्षरात्मक शब्दों में आदि अक्षरगत ओ ध्वनि दीर्घ के रूप में उच्चरित होती है

मोख[8]
कोडि[9]

---

१ दे० भरतसिंह उपाध्याय पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, स० २००८ वि०, पृ० ४४।
२ दे० Tagare : Historical Grammar of Apabhramsa, पूना, १९४८, पृ० ५८-५९।
३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १५।
४. दे० वही, च० ४१।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० २।
६. दे० वही, पृ० २९, प० ६३।
७. दे० वही, पृ० २५, प० ४८।
८. दे० वही, पृ० २०, प० २६।
९. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।
१०. दे० वही, च० २।

पर, निम्नांकित शब्दों में यह ध्वनि ह्रस्व रूप में उच्चरित होती है

मोक्ख[1]

डोम्बि[2]।

सन्धाभाषा में उपलब्ध मूल स्वरों के विवेचन के बाद, सन्धाभाषा से लुप्त हो गई ऋ ध्वनि का विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

आ० भा० आ० की ऋ ध्वनि का विवेचन

प्राकृत-अपभ्रंश में जहाँ दो नई ध्वनियों का अस्तित्व उपलब्ध होता है, वहाँ आ० भा० आ० की ऋ ध्वनि का मूल रूप लुप्त हो जाता है। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचन्द्र ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि ऋ ध्वनि अ, इ इत्यादि ध्वनियों में परिवर्तित होने लगी थी, जैसे वृषभ < वसहो तथा घृणा < घिणा इत्यादि।[3] वूल्नर ने भी इस क्रम-परिवर्तन की ओर संकेत किया है।[4]

आ० भा० आ० की ऋ ध्वनि में परिवर्तन की यह प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ती जाती है तथा अपभ्रंश-काल में यह ध्वनि-परिवर्तन अधिक विकसित रूप में प्राप्त होता है।[5] सन्धाभाषा में भी आ० भा० आ० की ऋ ध्वनि अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं होती, हालांकि मध्यग ऋ ध्वनि के मूल रूप का एक उदाहरण मिलता है जिसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।

---

१. दे बागची दोहाकोश पृ० ८, प० १०।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १०।

३ दे० Prakrit Grammar of Hemchandra सम्पादक पी० एल० वैद्य, प्रकाशक मोतीलाल लधाजी पूना, १९२८ ई०, पृ० २०।

४ दे० प्राकृत प्रवेशिका, लेखक : ए० सी० वूल्नर, अनुवादक बनारसी दास जैन, प्रकाशक पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३३ ई०। पृ० २४-२५।

५ दे० प्राकृत विमर्श, ले० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ-विश्वविद्यालय, प्रथमावृत्ति, स० २००९, पृ० १२७।

आदि ऋ

ऋ > उ

सन्धाभाषा मे प्रा० भा० आ० की आदि ऋ के सुरक्षित रूप नहीं मिलते। परिवर्तित रूप का भी केवल एक उदाहरण उपलब्ध होता है, जहाँ प्रा० भा० आ० की आदि ऋ ध्वनि उ मे परिवर्तित हो जाती है :

ऋजु > उजु[1]

मध्यग ऋ ध्वनि के सुरक्षित रूप का विवेचन

हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित पाठ मे कण्हपा के एक चर्यापद मे 'दृढ' (<दृढ) शब्द का प्रयोग मिलता है।[2] इस प्रकार, मध्यग ऋ ध्वनि के सन्धाभाषा मे अपने मूल रूप में उपलब्ध होने का उदाहरण मिलता है। परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि शहीदुल्ला ने उक्त चर्यापद का जो संशोधित पाठ दिया है, उसमें 'दृढ' के स्थान पर 'दिढ' शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] कण्हपा के दूसरे चर्यापद मे शास्त्री ने भी दिढ़ शब्द का ही प्रयोग किया है।[4] अतः सन्धाभाषा मे मध्यग ऋ ध्वनि का अपने मूल रूप मे प्राप्त होना चिन्त्य है।

मध्यग ऋ ध्वनि के परिवर्तित रूपों का विवेचन

प्रा० भा० आ० की मध्यग ऋ ध्वनि सन्धाभाषा मे निम्नांकित ध्वनियों मे परिवर्तित हुई है

अ के रूप में

गृह > घर[5]

तृतीय > तइला[6]

प्रथम उदाहरण के सम्बन्ध मे टर्नर का मत उल्लेखनीय है। उनने गृह

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३२।

२. वही, दे० च० ९।

३ Shahidullah, M. · Les Chants Mystiques, पेरिस, १९२८, पृ० १११।

४. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ११।

५. दे० पा० टि०, ३।

६. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ५०।

शब्द से घर की उत्पत्ति नहीं मानी है, बल्कि उसके सम्भावित रूप की कल्पना की है।[1]

आ के रूप में

कृष्ण > काण्ह[2]
काऩ्ह[3]
कान्हि[4] इत्यादि।

इ के रूप में

गृह > गिह[5]
घृणा > घिण[6]
तृण > तिन[7]
तृष्णार्त्त > तिसिओ[6]
दृष्टम् > दिट्ठ[9]
दृढ > दिढ[10]
मृग > मिअ[11]

---

१ दे० Turner, R. L. : A Comparative to Etymological Dictionary of the Nepali Language, London, 1931, पृ० १५४।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४२, प० १३, पृ० ४४, प० २२।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १०,११,१२,१३ और १६।
४ दे० वही, च० ७ और १३।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३९, प० १११।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३१।
७ दे० वही, च० ६।
८. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० ६१।
६ दे० वही, पृ० १६, प० ८।
१० दे० वही, पृ० ४४, प० २२।
११. दे० वही, पृ० ३६, प० ६१।

हृदय > हिअ[1]

अमृत > अमिअ[2]

ईदश > अइस[3]

सदृश > सरिस[4]

दृष्टि > दिटिठ[5] इत्यादि ।

उ के रूप मे

पृच्छित > पुच्छइ[6]

पृच्छसि > पुच्छ[7]

अन्त्य ऋ ध्वनि का विवेचन

आदि ऋ ध्वनि की भांति अन्त्य ऋ ध्वनि के सुरक्षित रूप भी सन्धाभाषा मे नही मिलते । परिवर्त्तित रूप का भी केवल निम्नांकित एक उदाहरण उपलब्ध होता है जहा आ० भा० आ० की अन्त्य ऋ ध्वनि सन्धाभाषा मे इ मे परिवर्त्तित हो जाती है । जैसे

मातृ > माइ[8]

सन्धि स्वर ऐ तथा औ का विवेचन

आ० भा० आ० के बाद म० भा० आ० के प्रथम चरण से ही सन्ध्यक्षरो मे सरलीकरण की प्रवृत्ति का प्रारम्भ हो गया था तथा ऐ औ ध्वनियाँ

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३१, प० ७३ ।

२ द० वही, पृ० २७ प० ५६ ।

३ दे० वही, पृ० २० प० २४ ।

४ दे० वही पृ० ३४ प० ८६ ।

५ द० वही, पृ० ३७, प० ६६ ।

६. दे० वही, पृ० २८, प० ६२ ।

७ द० वही, पृ० ३७ प० १०० ।

८ दे० वही पृ० ३४, प० ८४ ।

क्रमश अपने गुण रूप[1] ए तथा ओ की ओर झुक रही थी।[2] इस प्रवृत्ति की चरम परिणति पालि भाषा मे उपलब्ध होती हैं। वहाँ ऐ तथा औ ध्वनियो का प्रयोग लुप्त हो जाता हैं।[3]

क्रमिक विकास की यह प्रवृत्ति सन्धाभाषा मे भी उपलब्ध होती हैं। वहाँ ऐ तथा औ ध्वनियो का प्रयोग बहुत कम मिलता है। सन्धाभाषा मे ऐ तथा औ दोनो ही केवल मध्यग ध्वनि के रूप मे मिलते हैं। उनके आदि तथा अन्त्य ध्वनि-रूप सन्धाभाषा मे नहीं मिलते। सन्धाभाषा मे उपलब्ध सन्धि-स्वरो की दूसरी विशेषता यह हैं कि इनके जो रूप आ० भा० आ० मे मिलते हैं, वे ही रूप सन्धाभाषा मे भी उपलब्ध होते हैं। नीचे उनका विवेचन प्रस्तुत किया जाता हैं।

मध्यग ऐ

ऐ < ऐ

सन्धाभाषा की मध्यग ऐ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ऐ ध्वनि का ही रूप है। जैसे

नैरामणि[4] < नैरात्म्य

तैलोए[5] < त्रैलोक्य

मध्यग औ

औ < औ

सन्धाभाषा की मध्यग औ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग औ ध्वनि का रूप है। जैसे

नौका[6] < नौका

---

१. दे० Kale M. R A Higher Sanskrit Grammar, सातवाँ संस्करण, बम्बई, १९३१, पृ० ११।

२ दे० Chatterji, S K The Origin & Development of the Bengali Language, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२६, प्रथम भाग, भूमिका पृ० १७।

३ दे० पा० टि० १९७, पृ० ५५।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।

५ दे० वही, च० ४२।

६. दे० वही, च० ३८।

सन्धिस्वर का अभाव पूर्वी अथवा बिहारी भाषाओं की एक विशेषता है।[1] सन्धाभाषा में उनका अभाव इस बात का प्रमाण है कि सन्धाभाषा पूर्वी प्रदेश की ही भाषा है।

अनुनासिक स्वर

आ० भा० आ० के बाद म० भा० आ० में ही स्वरों में अनुनासिकता का प्रचलन आरम्भ हो गया।[2] सन्धाभाषा में भी यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। स्वरों के ऐतिहासिक विवेचन के प्रसंग में इस अध्याय में पीछे इ, उ, ए तथा ओ के अनुनासिक रूपों का उल्लेख हुआ है।[3]

स्वरों के नासिक्यीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राकृत में कुछ ऐसे स्वर भी उपलब्ध होने लगते हैं, जिनके मूल प्रा० भा० आ० कालीन रूप अनुनासिक नहीं थे।[4] सन्धाभाषा में भी कुछ ऐसे अनुनासिक स्वर उपलब्ध होते हैं जिनके मूल रूप अनुनासिक नहीं थे। नीचे उनका वर्णन दिया जाता है।

अन्त्य ईं

ईं < आ

सन्धाभाषा की अन्त्य ईं अनुनासिक ध्वनि प्रा० भा० आ० की आ ध्वनि से निकली है। जैसे

मईं[5] < मया

अन्त्य एँ

एँ < ए

सन्धाभाषा की अन्त्य एँ अनुनासिक ध्वनि प्रा० भा० आ० की ए ध्वनि का ही अनुनासिक रूप है। जैसे

---

१. दे० Grierson Linguistic Survey of India Vol V Part II, पृ० २४।
२. दे० तगारे Historical Grammar of Apabhramsa, पूना, १६४८, पृ० ६३।
३. दे० यह अध्याय, पृ० ३०-३१।
४. द० पा० टि० २६४ पृ० ६२।
५. दे० बागची दोहाकोश पृ० २१, प० ४८।

घरें[1] < गृहे

मध्यग इँ

इँ < इ

सन्धाभाषा की मध्यग इँ ध्वनि आ० भा० आ० की इ ध्वनि का ही अनुनासिक रूप है। जैसे

निंद[2] < निद्रा

आदि उँ

उँ < अ

सन्धाभाषा की आदि उँ ध्वनि आ० भा० आ० की उ ध्वनि का अनुनासिक रूप है। जैसे

उँचा[3] < उच्च

अकारण नासिक्यीकरण

उपर्युक्त 'घरें' तथा 'उँचा' शब्दों में जो नासिक्यीकरण मिलता है, उसे ग्रियर्सन की शैली पर अकारण नासिक्यीकरण कहेंगे।[4] अन्य उदाहरणों में अनुनासिक वर्णों की उपस्थिति के कारण ही अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु की स्थिति मिलती है।

क्षतिपूरक नासिक्यीकरण

सन्धाभाषा में क्षतिपूरक नासिक्यीकरण के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। आ० भा० आ० के शब्दों से जब किसी मध्यग तथा अन्त्य अनुनासिक वर्ण का लोप होता है, तब उसकी क्षतिपूर्ति के रूप में उसका पूर्ववर्ती वर्ण सानुनासिक हो जाता है। जैसे

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।

२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १३।

३. दे० वही, च० २८।

४. दे० J. R. A S १९२२, पृ० ३८१ में ग्रियर्सन का लेख 'Spontaneous Nasalisation in the Indo Aryan Languages'

मध्यग अनुनासिक वर्ण का लोप

इदि[1] < इन्द्रिय

सपुन्ना[2] < सम्पूर्ण

अन्त्य अनुनासिक वर्ण का लोप

नहिँ[3] < तस्मिन

जहिँ[4] < यस्मिन

कही कही निरनुनासिक सयुक्ताक्षरो से भी एक वर्ण के लोप की क्षतिपूर्त्ति के कारण अनुनासिकता की स्थिति उत्पन्न होती है। जैसे

जिघइँ[5] < जिघ्रति

सन्धाभाषा मे अनुनासिकता के लिए बागची के सस्करण मे अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु दोनो ही लिपि-सकेतो का व्यवहार मिलता है, जिनमे प्रमुखता चन्द्रबिन्दु की ही है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि सरह के 'दोहाकोश' के तिब्बती सस्करण की जो फोटो प्रतिलिपियाँ तिब्बत स प्राप्त हुई हैं उनमे अनुनासिकता के लिए चन्द्रबिन्दु क स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग अधिक मिलता है।[6] राहुलजी की अत्याधुनिक पुस्तक 'दोहाकोश'[7] से भी इसकी पुष्टि होती है। वस्तुत, राहुलजी ने सरह के दोहो का जो सम्पादन इस पुस्तक मे किया है, उसमे सम्पूर्ण पाठ मे चन्द्रबिन्दु सकेत का व्यवहार केवल दो स्थानो पर हुआ है। इसके विपरीत

---

१ दे० शास्त्री बौ गा० दो०, च० ८८।

२ दे० वही, च० ४२।

३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ११।

४ दे० वही पृ० २४, प० ८४।

५ दे० वही, पृ० ४१, प० ६।

६ दे० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के पास सुरक्षित सरह व दोहाकोश की तिब्बती फोटो प्रतिलिपियाँ।

७ दे० राहुल साकृत्यायन दोहाकोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम सस्करण, १९५७ ई०।

उनकी पुस्तक 'हिन्दी काव्यधारा' में सरह के दोहों में पैंसठ बार चन्द्रबिन्दु का व्यवहार मिलता है। वास्तविक स्थिति यह है कि सन्धाभाषा में चन्द्रबिन्दु की ध्वनि का प्रचलन था, परन्तु लिपि-संकेत अनुस्वार ही था।[2] उदाहरण के लिए, प्रत्येक ग्रन्थ के भिन्न भिन्न पाठों का उल्लेख नीचे किया जाता है जिसके आधार पर अनुस्वार लिपि संकेत के प्रयोग की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है

बागची संस्करण	हि० का० धा संस्करण	दोहा० संस्करण	तिब्बती फोटो प्रतियों का सं०
वसं[3]	वेसें[4]	वसें	वंसें
सरहं[5]	*सरहे*[6]	*सरहें*[7]	*सरहें*[10]

१ दे० राहुल साङ्कृत्यायन हिन्दी-काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९४९।

२ अनुस्वार लिपिसंकेत के बाद भी उच्चारण चन्द्रबिन्दु का ही होता था क्योंकि अनुस्वार के उच्चारण की प्रवृत्ति क्रमश कम होती जा रही थी। इस सम्बन्ध मे देखिए चटर्जी, सुनीति कुमार The Origin & Development of the Bengali Language, प्रथम खण्ड, पृ० ३६२।

३ दे० बागची दोहाकोष, पृ० १४, प० ३।

४ दे० वही, पृ० २०, प० २५।

५ दे० पा० टि० २५६, पृ० ४, प० ३।

६ दे० वही, पृ० ६, प० २५।

७ दे० पा० टि०, २५८ पृ० २, प० २।

८ दे० वही, पृ० १२, प० ४६।

९ दे० पा० टि०, २५७।

१० दे० वही।

स्वरानुक्रम

सन्धाभाषा मे स्वरानुक्रम के उदाहरण पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होते हैं। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि सन्धि स्वरों के बाद स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा मे नही मिलता। केवल मूल स्वरो के बाद ही स्वरानुक्रम के के उदाहरण स धाभाषा मे उपलब्ध होते हैं। प्राय सभी मूल स्वरो के बाद स्वरानुक्रम के उदाहरण सन्धाभाषा मे मिलते हैं। अनुक्रम के रूप मे आने वाले स्वरो मे अ तथा आ की ही प्रधानता है। दीर्घ ई तथा ओ स्वर अनुक्रम के रूप मे प्रयुक्त नही होते।

अ के बाद निम्नाकित स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा मे प्राप्त होता है -

अ का

निलअ[1]

मअ[2]

मुसअ[3]

सुरअ[4]

भअवा[5]

भअवइ[6]

नअरी[7] इत्यादि।

आ का

इस प्रकार के रूपो की सख्या अपेक्षाकृत कम है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।

२ दे० वही, च० ६।

३ दे० वही, च० २१।

४ दे० वही, च० १६।

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १७।

६ दे० वही।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।

विमआ[1]

पुञ्चआ[2] इत्यादि ।

इ का

पइ[3]

भअवइ[4]

नइरी[5] इत्यादि ।

उ का

जउना[5]

ऊ का

परऊआर[6]

स्वरानुक्रम के प्रसंग मे दीर्घ ऊ का प्रचलन सन्धाभाषा म बहुत ही कम मिलता है। अ के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर के बाद दीर्घ ऊ का अनुक्रम सन्धाभाषा मे उपलब्ध नही होता।

ए का

गएन्दा[8]

आ के बाद निम्नांकित स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा मे मिलता है

---

१. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ४४, प० २३।
२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८, प० ६२।
४. दे० वही, पृ० ५, प० १७।
५. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४१।
६. दे० वही, च० १४।
७. दे० बागची : दोहाकोश पृ० ३९, प० ११२।
८. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १६।

अ का

आअत्तण[1]

काअ[2]

दिवाअर[3]

पाअ[4]

राअ[5]

वाअ[6]

विराअ[7]

साअर[8]

दिवाअरा[9] इत्यादि।

आ का

काआ[10]

छाआ[11]

माआ[12]

राआ[13] इत्यादि।

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३, प० १।
२. दे० वही, पृ० ३४, प० ८३।
३. दे० वही, पृ० ३७, प० ९८।
४. दे० पा० टि०, १८१।
५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८५।
६. दे० वही, पृ० ३४, प० ८३।
७. दे० वही, पृ० ३४, प० ८५।
८. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४२।
९. दे० बागची: दोहाकोश, पृ० ३५, प० ४७।
१०. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो० च० १।
११. दे० वही, च० ४६।
१२. दे० वही।
१३. दे० वही, च० ३४।

इ का

नाइ[1]

माइए[2]

उ का

काउ[3]

घाउ[4]

राउतु[5]

लाउ[6]

ह्रस्व इ के बाद निम्नांकित स्वरों का अनुक्रम सन्ध्याभाषा में मिलता है :

अ का

अमिअ[7]

अलिअ[8]

इन्दिअ[9]

चिअ[10]

पण्डिअ[11]

मिअ[12]

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ३८ ।
२. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८४ ।
३. दे० वही, पृ० ३१, प० ७० ।
४. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २८ ।
५. दे० वही, च० ४१ और ४३ ।
६. दे० वही, च० १७ ।
७. दे० वही, च० २१ ।
८. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४०, प० २ ।
९. दे० वही, पृ० २१, प० २६ ।
१०. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३१ ।
११. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६८ ।
१२. दे० वही, पृ० ३६, प० ९१ ।

विअ[1] तथा

हिअ[2] इत्यादि ।

अ का

अमिआह[3]

विआण[4]

कुडिआ[5]

गविआ[6]

पण्डिआ[7]

पाणिआ[8]

फुलिआ[9]

पिआला[10]

विआरे[11] इत्यादि ।

ए का

माइए[12]

आलिए[13]

दीर्घ ई के बाद केवल दो स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा मे प्राप्त है

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१ प० ६ ।
२ दे० वही, पृ० ३१, प० ७३ ।
३ दे० वही, पृ० ४०, प० ४ ।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २० ।
५ दे० वही, च० १० ।
६ दे० वही, च० ३३ ।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० २ ।
८ दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० ४३ ।
९ दे० वही, च० ५० ।
१० दे० पा० टि०, ३१४ ।
११ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो, च० १५ ।
१२ दे० पा० टि०, २९८ ।
१३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४४, प० २४ ।

इ का

इन्दीअ[1]

चीअ[2]

ए का

चीए[3]

ह्रस्व उ के बाद निम्नांकित स्वरों का अनुक्रम सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है

अ का

तरुअर[4]

निहुअण[5]

भुअण[6]

महुअर[7]

रुअ[8]

मुअण[9] इत्यादि।

आ का

पउआ[1]

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३ प० ९।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १६ और ८।
३ दे० वही च० १।
४ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४ प० १२।
५ दे० वही पृ० २ प० ३ इत्यादि।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १८।
७ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४१ प० ६।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४८।
९ दे० वही च० ४६।
१० दे० पा० टि० ३२९।

वालुआ[1]

सुआ[2]

दुआरे[3]

इ का

सुइणा[4]

लुइ[5]

ए का

उएस[6]

ह्रस्व उ की भाँति दीर्घ ऊ के बाद भी अ, आ, इ तथा ए स्वरों का अनुक्रम सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है।

अ का

भूअ[7]

मरूअ[8]

आ का

परऊआर[9]

इ का

अवधूइ[10]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ४१।

२. दे० वही।

३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४४, प० २२।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।

५ दे० वही, च० १, २८ तथा ३४।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २५।

७ दे० वही, पृ० ३, प० १।

८ दे० वही, पृ० ३१, प० ७२

६ दे० पा० टि० २८२।

१० दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७।

ए का

स्एँ[१]

ए के बाद निम्नांकित स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है :

अ का

वेअण[२]

तेअ[३]

वेअ[४]

सम्वेअण[५]

वेअणु[६]

उ का

नउर[७]

भेउ[८]

ए का

वेएँ[९]

---

१. दे० बागची · दोहाकोश, पृ० ४१, प० ६ ।

२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६ ।

३ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४१, प० ७ ।

४. दे० वही, पृ० ४० प २ ।

५. दे० वही, पृ० ३६ प० ६६ ।

६. दे० वही, पृ० ३२, प० ७१ ।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११ ।

८. दे० बागची · दोहाकोश, पृ० ६, प० २५ ।

९. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २६ ।

ओ के बाद निम्नांकित स्वरो का अनुक्रम सन्धाभाषा मे प्राप्त होता है :

अ का

लोअ[1]

लोअण[2]

भोअणे[3]

इ का

जोइ[4]

उ का

जोउ[5]

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ५ ।

२ दे० बागची दोहाकोष, पृ० ३०, प० ६६ ।

३. दे० वही, पृ० १६, प० ८ ।

४. दे० वही, पृ० ६, प० २५ ।

५. दे० वही, पृ० ७२, प० ५४ ।

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ओ
अ	*	*	*	x	*	*	*	x
आ	*	*	*	x	*		x	
इ	*	*	x	x	x	x	*	x
ई	*	x	x	x	x		*	x
उ	*	*	*	x	x	x	*	x
ऊ	*	*	*	x	x	x	*	x
ए	*	x	x	x	*	x	*	x
ओ	*	x	*	x	*	x	x	x

खड़ी पंक्ति में लिखे गए स्वर मूल स्वर हैं, जिनके बाद किसी स्वर का अनुक्रम हुआ है तथा पड़ी पंक्ति वाले स्वर मूल स्वरों के बाद अनुक्रम के रूप में आए हुए स्वर हैं।

* संकेत का अर्थ है कि अनुक्रम के रूप में यह स्वर सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है तथा x संकेत से उसकी अनुपस्थिति सूचित होती है।

व्यंजनों का इतिहास

आ० भा० आ० के बाद अन्त्य व्यंजनों का लोप होने लगा। प्राकृत में पदान्त व्यंजन नहीं मिलते।[1] सन्धाभाषा में भी अन्त्य व्यंजनों का अभाव ही है। अन्त्य व्यंजन का केवल एक उदाहरण हरप्रसाद शास्त्री के संस्करण में प्राप्त होता है, जिसमें आ० भा० आ० का अन्त्य क् व्यंजन अपने मूल रूप में सुरक्षित है। यह उदाहरण है

वाक्[2]

इसके अतिरिक्त अन्य किसी अन्त्य व्यंजन का उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं मिलता।

सन्धाभाषा के आदि तथा मध्यग व्यंजनों में आ० भा० आ० के व्यंजनों से कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता। थोड़े परिवर्तनों के साथ सामान्यतः आ० भा० आ० के आदि तथा मध्यग व्यंजन सन्धाभाषा में सुरक्षित हैं। सन्धाभाषा के व्यंजनों का इतिहास नीचे दिया जा रहा है

कण्ठ्य वर्ग

आदि क

क् < क्

सन्धाभाषा का आदि क् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि क् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

करुण[3] < करुण, कलुण, करुणा, कलुणा

कम्म[4] < कर्म

कूव[5] < कूप

कप्प[6] < कल्प;

काअ[7] < काया इत्यादि।

---

१. दे० प्राकृतप्रवेशिका ए० सी० वूलनर, अनुवादक : बनारसीदास जैन, पृ० ४२।
२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, प० ३४, ३७ और ४०।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० २।
४. दे० वही, पृ० ६, प० २४।
५ दे० वही, पृ० १०, प० ८।
६. दे० वही, पृ० २६, प० ५२।
७. दे० वही, पृ० ३४, प० ८३।

मध्यग क्

क् < क

आदि क की भाँति सन्धाभाषा का मध्यग क् व्यजन भी आ० भा० आ० के मध्यग क व्यजन का ही रूप है। जैसे

वाकलअ[1] < वल्कल

भयकर < भयकर

आकाश[3] < आकाश

अवकाश[4] < अवकाश इत्यादि।

आदि ख्

ख < ख

सन्धाभाषा का आदि ख व्यजन आ० भा० आ० के आदि ख् का ही रूप है। जैसे

खज्जइ[5] < खादयति।

ख् < क्ष

सन्धाभाषा का आदि ख् व्यजन आ० भा० आ० के आदि क्ष सयुक्त व्यजन से उद्भूत है। जैसे

खण[6] < क्षण

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३।

२ दे० वही, च० १६।

३ दे० वही, च० ४१।

४. दे० वही, च० ३७।

५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८४।

६. दे० वही, पृ० ४५, प० २६।

खिति < क्षिति

खअ[2] < क्षय इत्यादि।

ख < स्त

कही कही सन्धाभाषा का आदि ख् व्यजन आ० भा० आ० के स्त सयुक्त व्यजन से उदभूत प्रतीत होता है। जैसे

खम्भा[3] < स्तम्भ।

मध्यग ख

ख् < ख्

सन्धाभाषा का मध्यग ख व्यजन आ० भा० आ० के मध्यग ख का ही रूप है। जैसे।

शिखर[4] < शिखर

ख् < क्ष

कुछ उदाहरणो मे सन्धाभाषा का मध्यग ख व्यजन आ० भा० आ० के क्ष सयुक्त व्यजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

भखअ[5] < भक्षयति

देखइ[6] < द्रक्ष्य।

ख् < ष्क

सन्धाभाषा का मध्यग ख् वर्ण आ० भा० आ० के ष्क वर्ण से उद्भूत है। जैसे

पोक्खर[7] < पुष्कर।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १८।
२ दे० वही, पृ० २६ प० ५४।
३ दे० पा० टि०, ३६४।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४७।
५ दे० वही, च० २१।
६. दे० वही, च० ४२।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० ३।

परिवर्त्तन की इस प्रक्रिया मे वर्णो का स्थान-विपर्यय भी हो गया है।

आदि ग्

ग् < ग

सन्धाभाषा का आदि ग् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि ग् का ही रूप है। जैसे

गुरु[1] < गुरु

गएन्द[2] < गजेन्द्र

मध्यग ग्

ग् < ग्

आदि ग् की भाँति सन्धाभाषा का मध्यग ग् व्यंजन भी आ० भा० आ० मध्यग ग् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

आगम[3] < आगम

जगहि[4] < जगत्या

नगर[5] < नगर इत्यादि।

आदि घ्

घ् < घ्

सन्धाभाषा का आदि घ व्यंजन आ० भा० आ० के आदि घ व्यंजन का ही रूप है। जैसे

घण[6] < घन

घडली[7] < घट इत्यादि।

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २, प० ६।
२. दे० वही, पृ० ३७, प० १००।
३. दे० वही, पृ० ३३, प० ७६।
४ दे० वही, पृ० २६, प० ५१।
५. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० १०।
६. दे० वही, च० १६।
७. दे० वही, च० ३।

घ् < ग्

कहीं-कहीं सन्धाभाषा का आदि घ् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि ग् व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे :

घर[1] < गृह

मध्यग घ्

घ् < घ्

सन्धाभाषा का मध्यग घ् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग घ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे :

लघिय[2] < लंघित

घ् < ह्

कहीं-कहीं सन्धाभाषा का मध्यग घ् व्यंजन आ० भा० आ० के ह् व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे :

सघारा[3] < सहार

तालव्य वर्ण

आदि च्

च् < च्

सन्धाभाषा का आदि च् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि च् व्यंजन का ही रूप है। जैसे :

चन्द[4] < चन्द्र

चउत्थ[5] < चतुर्थ

चाक[6] < चक्र इत्यादि।

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८४।
२. दे० वही, पृ० ४४, प० २५।
३. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, प० २०।
४. दे० बागची. दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।
५. दे० वही, पृ० १६, प० ११।
६. दे० वही, पृ० २०, प० २४।

मध्यग च्

च् < च्

सन्ध्याभाषा का मध्यग च् व्यंजन भी आ० भा० आ० के मध्यग च् का ही रूप है। जैसे

विचित्त[1] < विचित्र

च् < र्त

कहीं-कहीं सन्ध्याभाषा का मध्यग च् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग र्त संयुक्त व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

नाचन्ति[2] < नत्तति

आदि छ्

छ् < छ्

सन्ध्याभाषा का आदि छ् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि छ का ही रूप है। जैसे

छाआ[3] < छाया

छेवइ[4] < छेदयति इत्यादि।

छ < क्ष

सन्ध्याभाषा का आदि छ् व्यंजन आ० भा० आ० के क्ष संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

छार[5] < क्षार

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२।

२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १७।

३. दे० वही, च० ४६।

४. दे० वही, च० ४५।

५. दे० वही, च० ११।

मध्यग छ्

छ् < छ्

सन्धाभाषा का मध्यग छ् व्यंजन भी आ० भा० आ० के मध्यग छ का ही रूप है। जैसे :

इच्छे[1] < इच्छाम्

पुच्छइ[2] < पृच्छति ।

कुछ स्थानीय प्रयोगों में भी मध्यम छ् व्यंजन की स्थिति मिलती है, पर उनके इतिहास के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसे :

उछलिआँ[3] = ऊपर की ओर उठना

उछारा[4] = बहुत अधिक (समय) होना इत्यादि।

आदि ज्

ज् < ज्

सन्धाभाषा का आदि ज् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि ज् का ही रूप है। जैसे :

जम्म[5] < जन्म

जल[6] < जल

जग[7] < जगत्

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३, प० ४।

२. दे० वही, पृ० २८, प० ६२

३. दे० शास्त्री: बौ० गा० दो०, च० १९।

४. दे० वही, च० १४।

५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ७, प० २८।

६. दे० वही, पृ० ११, प० १८।

७. दे० वही, पृ० १४, प० ३।

ज् < य

सन्धाभाषा का आदि ज व्यंजन प्रा० भा० आ० के आदि य से उद्भूत है। जैसे

जोइ[1] < योगी

जुवइ[2] < युवती

जउना[3] < यमुना इत्यादि।

ज् < ज्ञ

सन्धाभाषा का आदि ज व्यंजन कहीं कहीं आ० भा० आ० के आदि ज्ञ संयुक्त व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

जाण[4] < ज्ञान

जाणिज्जइ[5] < ज्ञायते

मध्यग ज

ज् < ज्

सन्धाभाषा का मध्यग ज व्यंजन आ ० भा० आ० के मध्यग ज का ही रूप है। जैसे

गाजइ[6] < गजपति

वाजिर[7] < वज्रधर

अजरामर[8] < अजरामर

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २५।

२. दे० वही, पृ० १६, प० ७।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो ,च० १४।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ८।

५ दे० पा० टि०, ८०१।

६ दे० पा० टि०, ३८१।

७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४६, प० ३१।

८. दे० वही, पृ० ३१, प० ६६।

ज < य्

आदि ज की भाँति सन्धाभाषा का मध्यग ज व्यंजन भी आ० भा० आ० के मध्यग य अन्तस्थ वर्ण से निकला है। जैसे

महजाण[1] < महायान

ज < द्य

सन्धाभाषा का मध्यग ज व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग द्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

आजि[2] < अद्य

उपजइ[3] < उत्पद्यते।

आदि झ तथा मध्यग झ

झ < ध्य

सन्धाभाषा का आदि तथा मध्यग झ व्यंजन आ० भा० आ० के ध्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

आदि स्थान में

झाण[4] < ध्यान

मध्यग स्थान में

जुज्झअ[5] < युध्यते

बुज्झअ[6] < बुध्यते

---

१ दे० बागची दोहाकोष, पृ० १६ प० ११।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ४६।

३ दे० वही च० ४५।

४ दे० बागची दोहाकोष पृ० २६, प० ५३।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३३।

६ दे० वही च० ३३।

मौन[1] < मन्या

वान[1] < वन्या

मूर्द्धन्य वर्ण

भारतीय आर्यभाषाओं में मूर्द्धन्य ध्वनियों की स्थिति के सम्बन्ध में भाषा वैज्ञानिकों के दो मत हैं। वेदों में मूर्द्धन्य ध्वनि वाले शब्दों की संख्या कम मिलने के कारण डॉ० धीरेन्द्र वर्मा मूर्द्धन्य ध्वनियों को भारत-योरोपीय काल का नहीं मानते, बल्कि उनको हमारी भाषा में आगम आर्येतर जातियों के सम्पर्क का प्रभाव मानते हैं।[3] इस आर्येतर या बाह्य प्रभाव वाले मत के विरोध में हार्नले ने प्रमाण स्वरूप कहा है कि सदियों तक अरबी तथा फारसी भाषा के सम्पर्क में रहने पर भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में अरबी फारसी ध्वनियाँ नहीं मिलतीं।[4] बीम्स ने मूर्द्धन्य ध्वनियों को भारतीय दन्त्य ध्वनियों से उद्भूत माना है।[5] इस सम्बन्ध में हार्नले तथा बीम्स के मतों से डा० विश्वनाथ प्रसाद भी सहमत हैं। उन्होंने नरसमन का उद्धरण देते हुए यह बताया है कि नार्वे की भाषा में मूर्द्धन्य ध्वनियों का उपलब्ध होना इस बात का परिचायक है कि मूल भारत योरोपीय ध्वनि-समूह में मूर्द्धन्य ध्वनियाँ अवश्य रही होंगी।[6]

मगधी भाषा में मूर्द्धन्य ध्वनियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। उनका इतिहास नीचे दिया जाता है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३३।

२ दे० वही च० ३३।

३ दे० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग १९४९ पृ० ११०।

४ दे० हार्नले ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑव दि गाडियन लैंग्वेज, लन्दन, १८८०, पृ० १०।

५ दे० बीम्स ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑव दि मॉडर्न आर्यन लैंग्वेज आव इण्डिया, भाग १, लन्दन १८७२, पृ० २३०।

६ दे० इण्डियन लिंगुइस्टिक्स, चटर्जी वाल्यूम, नवम्बर १९५५, पृ० ३१० में डा० प्रसाद का लेख।

आदि ट्

ट् < त्र

सन्धाभाषा की आदि ट् मूर्द्धन्य ध्वनि आ० भा० आ० की त्र संयुक्त ध्वनि से निकली है। जैसे

टुटि[1] < त्रुटय।

इसके अतिरिक्त कुछ स्थानीय प्रयोगों में आदि ट् ध्वनि के उदाहरण मिलते हैं जिनके मूल रूप आ० भा० आ० में नहीं पाये जाते। जैसे

टाकलि[2] = तक टाणअ[3] = खींचा, टालत[4] = टीले तक, टलि[5] = हट कर इत्यादि।

मध्यग ट

ट < ट

सन्धाभाषा की मध्यग ट् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ट् ध्वनि का ही रूप है। जैसे

फुटिला[6] < प्रस्फुटित

ट् < ट्य

सन्धाभाषा की मध्यग ट् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ट्य ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

तुटइ[7] < त्रुट्यति।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३७।

२ दे० वही, च० १६।

३ दे० वही च० ३८।

४ दे० वही, च० ३३।

५. दे० वही, च० २१।

६. दे० वही, च० ५०।

७. दे० वही, च० ४६।

कुछ प्राकृत मे आए हुए रूपो मे भी मध्यग ट् ध्वनि के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे

फेटइ[1]
फीटउ[2] } < फिट्ट (प्राकृत)[3]

आदि ठ

ठ् < स्थ

सन्धाभाषा की आदि ठ् ध्वनि आ० भा० आ० की आदि स्थ ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

ठिउ[4] < स्थित
ठाण[5] < स्थान
ठिय[6] < स्थिर

ठ् < ठ्

सन्धाभाषा की आदि ठ ध्वनि आ० भा० आ० की आदि ठ् ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

ठाकुर[7] < ठक्कुर

मध्यग ठ्

ठ् < ठ्

मध्यग ठ् ध्वनि की भाँति सन्धाभाषा की मध्यग ठ् ध्वनि भी आ० भा० आ० की मध्यग ठ् ध्वनि का ही रूप है। जैसे

कुठार[8] < कुठार

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ३०।
२ दे० वही, च० १२।
३ दे० सेठ, ह० दा० त्रि० : पाइअसद्‌-महण्णवो, प्रथम संस्करण, कलकत्ता, १९२८, पृ० ७७१।
४. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १३, प० ७।
५. दे० वही, पृ० २६, प० ५२।
६. दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।
७ दे० पा० टि०, ४२९
८. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४५।

ठ < त्थ

सन्धाभाषा की मध्यग ठ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग त्थ संयुक्त ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

उठम्भि[1] < उत्थितो

आदि ड्

ड < ड

सन्धाभाषा की आदि ड् ध्वनि आ० भा० आ० की आदि ड् ध्वनि का ही रूप है। जैसे

डमरुलि[2] < डमरु

डोम्बी[3] < डोम्बिन्

ड् < द्

सन्धाभाषा की आदि ड् ध्वनि आ० भा० आ० की आदि द् ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

डाह[4] < दहन

मध्यग ड्

ड् < ड्

सन्धाभाषा की मध्यग ड् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ड ध्वनि का ही रूप है। जैसे

चडाली[5] < चाण्डाल

भडार[6] < भाण्डार

मडल[7] < मण्डल इत्यादि।

---

१ दे० पा० टि०, ४३१।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३१।

३ दे० वही च० १४।

४ दे० वही, च० १७।

५ दे० वही, च० १८।

६ दे० वही, च० ३६।

७ दे० वही, च० ३२।

कुछ देश्य प्रयोगो मे भी मध्यग ड् ध्वनि के उदाहरण उपलब्ध होते है। जैसे

खरडह[1] = रुक्ष करना,

झगडह[2] = झगडा करना इत्यादि।

मध्यग ढ्

सन्धाभाषा मे आदि ढ् ध्वनि के उदाहरण नहीं मिलते। अत, केवल मध्यग ढ् ध्वनि का ही वर्णन नीचे दिया जाता है।

ढ् < ढ्

सन्धाभाषा की मध्यग ढ् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ढ् ध्वनि का ही रूप है। जैसे :

दिढ[3] < दृढम्

कुछ देश्य प्रयोगो मे भी मध्यग ढ् ध्वनि के उदाहरण मिलते है। जैसे

वड[4] = मूक, वाक् शक्ति से रहित।[5]

ड् तथा ढ्

आ० भा० आ० म आधुनिक उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ड् तथा ढ ध्वनियो स मिलती-जुलती ध्वनिया मिलती हैं, पर उनका उच्चारण उत्क्षिप्त ध्वनि की भाँति नहीं, बल्कि पार्श्विक ध्वनियो की भाँति होता था।[6] उनके लिपि-सक्केत भी आज की ड् तथा ढ् ध्वनियो के लिपि-सकेता से भिन्न थ। आधुनिक उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ड् तथा ढ् ध्वनियो का उत्क्षिप्त उच्चारण, चटर्जी के अनु-

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २२।

२. दे० वही।

३ दे० वही, पृ० ६ प० २३।

४ दे० वही, पृ० २०, प० २०।

५. दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो, कलकत्ता १९२८, पृ० ९० ।

६. दे० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग, १९४९, पृ० ९४ तथा ९६।

मार, सक्रान्ति-कालीन म० भा० आ० से आरम्भ होता है।[1] उनके आधुनिक लिपि-सकेतो का आरम्भ कब हुआ, यह नही कहा जा सकता। निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि सन्धाभाषा मे ये ध्वनियाँ थी, पर उनके आधुनिक लिपि-सकेतो (ड़ तथा ढ़) की स्थिति चिन्त्य है।

सन्धाभाषा मे उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनियो के लिए आधुनिक लिपि-सकेतो (ड़, ढ़) का व्यवहार शास्त्री तथा बागची दोनो के ही सस्करणो मे है। ये ध्वनियाँ शब्दो के आदि स्थान म उपलब्ध नही होतीं। अत., उनके मिलता मध्यग स्थानो का ही विवेचन नीचे दिया जाता है।

मध्यग ड़्

ड़् < ट्

सन्धाभाषा की मध्यग ड़् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ट् ध्वनि से उद्भूत है। जैसे:

कुड़िआ[2] < कुटीर।

यहाँ उल्लेखनीय है कि हेमचन्द्र ने कुडिआ शब्द को देश्य शब्द माना है।[3]

ड़् < त्

सन्धाभाषा की मध्यग ड़् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग त् ध्वनि से उद्भूत प्रतीत होती है। जैसे:

पड़िल[4] < पतित
पड़िहासहि[5] < प्रतिभासते
पड़िवेसी[6] < प्रतिवेशी

---

१. दे० चटर्जी, सु० कु The Origin & Development of the Language, भाग १, पृ० ४६४।
२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १०।
३. दे० पिशेल, आर : देशी नाममाला, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, १६३८, शब्दसूची, पृ० २५।
४. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ६, प० ६।
५. दे० वही, पृ० ६, प० ५।
६. दे० वही, पृ० २८, प० ६२।

ड् < र

सन्धाभाषा की मध्यग ड् ध्वनि कहीं-कहीं आ० भा० आ० की मध्यग र् ध्वनि से उदभूत प्रतीत होती है। जैसे

फुडण[1] < स्फुरण

कुछ स्थानीय प्रयोगों में भी मध्यग ड् ध्वनि के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे

लोडइ[2], पीडइ[3], केडुआल[4] इत्यादि।

मध्यग ढ्

ढ् < ठ्

सन्धाभाषा की मध्यग ढ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ठ् ध्वनि से उद्भूत है। जैसे

पढइ[5] < पठति।

ढ् < ढ्

सन्धाभाषा की मध्यग ढ् ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग ढ् ध्वनि का उत्क्षिप्त रूप है। जैसे

दिढ[6] < दृढ

वाढइ[7] < बाढ

ढ् < थ्

कुछ स्थानों में सन्धाभाषा की मध्यग ढ ध्वनि आ० भा० आ० की मध्यग थ् ध्वनि से उदभूत प्रतीत होती है। जैसे :

गढइ[8] < ग्रथित

---

१ दे० पा० टि० ४२७।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।

३ दे० वही।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ८।

५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४३, प० १२।

६ दे० वही पृ० २७, प० २७।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४५।

८. दे० वही, च० ५।

पढमे[1] < प्रथमे

ढ् < द्ध

कहीं-कहीं सन्धाभाषा की मध्यग ढ् ध्वनि प्रा० भा० आ० की द्ध संयुक्त ध्वनि से उद्भूत प्रतीत होती है। जैसे :

बाढा[2] < बद्धा।

ढ् < ह्य

कहीं कहीं सन्धाभाषा की मध्यग ढ् ध्वनि प्रा० भा० आ० की ह्य संयुक्त ध्वनि से उद्भूत प्रतीत होती है। जैसे

दाढइ[3] < दह्यते।

दन्त्य वर्ण

आदि त्

त् < त्

सन्धाभाषा का आदि त् व्यंजन प्रा० भा० आ० के आदि त् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

तहिँ[4] < तत्र

तरु[5] < तरु

तक्क[6] < तर्क

तत्त[7] < तत्त्व इत्यादि।

---

१ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३५, प० ६०।

२ दे० वही, पृ० ३५, प० ८८।

३ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, प० ४६।

४. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३, प० ३।

५ दे० वही, पृ० १०, प० ७।

६ दे० वही, पृ० १६, प० ११।

७ दे० वही।

त् < त्र

सन्धाभाषा का आदि त् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि त्र संयुक्त व्यंजन का परिवर्तित रूप है। जैसे :

तिहुअण[1] < त्रिभुवन

तुट्टइ[2] < त्रुट्यति

तिण्ण[3] < त्रीणि इत्यादि।

मध्यग त्

त् < त

सन्धाभाषा का मध्यग त् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग त् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

जउतुक[4] < यौतुक

भतारि[5] < भर्तृ

जितेल[6] < जेतृ इत्यादि।

आदि थ

थ् < स्थ

सन्धाभाषा का आदि थ् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि स्थ संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

थिर[7] < स्थिर

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ३।

२ दे० वही, पृ० ११, प० १५।

३ दे० वही पृ० २३, प० ३६।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १९।

५ दे० वही, च० २०।

६. दे० वही, च० १२।

७. दे० वही, च० ३।

कुछ प्राकृत से आए हुए शब्दों में भी आदि थ् व्यंजन के उदाहरण मिलते हैं। जैसे

थाको[1]
थाकिउ[2] } =होना, रहना।
थाकु[3]

मध्यग थ्

थ् < थ्

सन्धाभाषा का मध्यग थ् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग थ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे।

तथागत[4] < तथागत

पिथक[5] < पृथक्

थ् < स्त

सन्धाभाषा का मध्यग थ् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग स्त संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे :

पाथर[6] < प्रस्तर।

आदि द्

द् < द्

सन्धाभाषा का आदि द् व्यंजन आ० भा० आ० के द् व्यंजन का ही रूप है। जैसे :

दिवाअरु[7] < दिवाकर

---

१. दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० ४४।

२. दे० वही, च० ४६।

३. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ३८, प० १०३।

४. दे० वही, पृ० ४३, प० १८।

५. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३७।

६. दे० वही, च० ४७।

७. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २५, प० ४७।

दह[1] < दशम

दरिसण[2] < दर्शन

दिढ[3] < दृढ।

मध्यग द्

द < द

सन्ध्याभाषा का मध्यग द व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग द व्यंजन का ही रूप है। जैसे

द्वादस[4] < द्वादश

अदभुअ[5] < अदभुत

चौदीस < चतुर्दिक् इत्यादि।

द < द्व

सन्ध्याभाषा का मध्यग द व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग द्व संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

विदुजन[6] < विद्वज्जन

अदअ[7] < अद्वय

आदि ध्

ध् < ध

सन्ध्याभाषा का आदि ध् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि ध् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

धम्म[8] < धर्म

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २४, प० ४३।
२ दे० वही पृ० १०, प० ७।
३ दे० वही पृ० ६, प० २३।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३४।
५ दे० वही, च० ३९।
६ दे० वही, च० ६।
७ दे० वही, च० ४५।
८ दे० वही, च० ५।
९ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ९, प० २।

धावइ[1] < धावति

धण्णो[2] < धन्य इत्यादि ।

मध्यग ध्

ध् < ध

सन्धाभाषा का मध्यग ध् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग ध व्यंजन का ही रूप है। जैसे।

पहुधर[3] < प्रभुधर

अवधूइ[4] < अवधूती

ओष्ठ्य वर्ण

आदि प्

प < प

सन्धाभाषा का आदि प् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि प व्यंजन का ही रूप है। जैसे

पाणी[5] < पानीय

पवण[6] < पवन

पखा[7] < पक्ष

पइसइ[8] < प्रविशति इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६ प० ११ ।

२ दे० वही, पृ० ३१, प० ६६ ।

३ दे० वही, पृ० ४३, प० २१ ।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७ ।

५ दे० बागची दोहाकोश पृ० ६, प० २ ।

६ दे० वही, पृ० ११ प० १८ ।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४ ।

८ दे० पा० टि०, ४६७ ।

मध्यग प्

प < प्

सन्धाभाषा का मध्यग प् व्यंजन भी आ० भा० आ० के मध्यग प् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

सपुण्ण[1] < सम्पूर्ण

कप्प[2] < कल्प

अन्तिम उदाहरण में समीकरण का रूप भी उपलब्ध होता है।

आदि फ्

फ् < फ

सन्धाभाषा का आदि फ् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि फ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

फुलिअ[3] < फुल्ल

फ < स्फ

कुछ स्थलों में सन्धाभाषा का आदि फ व्यंजन आ० भा० आ० के आदि स्फ संयुक्त व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

फुड[4] < स्फुट

फुरइ[5] < स्फुरति

मध्यग फ्

फ < फ्

सन्धाभाषा का मध्यग फ् व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग फ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे

सिरिफले[6] < श्रीफले

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ११, प० १६।

२ दे० वही पृ० २६, प० ५२।

३ दे० वही पृ० ४, प० १२।

४ दे० वही, पृ० ६, प ५।

५ दे० वही, पृ० ११, प० १५।

६. दे० वही, पृ० ४०, प० २।

व् का विवेचन

मागधी प्राकृत में व के लिए व् संकेत का प्रयोग मिलता है।[1] पूर्वी भाषाओं के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में व् तथा ब् का अन्तर स्पष्ट नहीं होने तथा आ० भा० आ० के व् व्यंजन के ब में परिवर्तित होने की प्रवृत्तियों की ओर चटर्जी ने संकेत किया है।[2] राहुलजी के नवीन ग्रन्थ 'दोहाकोश' में आ० भा० आ० के व् के लिए ब् का व्यवहार प्रचुर मात्रा में मिलता है।[3]

भायाणी का मत है कि कुछ अपभ्रंशों में ब् तथा व् का अन्तर नहीं रखा गया है।[4] सन्धाभाषा में ब् तथा व् की अनिश्चितता अधिक नहीं मिलती। कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं, जिनमें ब् तथा व् दोनों का ही प्रयोग किया गया है, फिर भी ब् तथा व् की स्वतन्त्र स्थिति बनी हुई है। उपलब्ध पाठों में आए हुए व्यंजन का इतिहास नीचे दिया जाता है।

आदि ब्

ब् < ब्

सन्धाभाषा का आदि ब् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि ब् का ही रूप है। जैसे

बन्धा[5] < बन्ध

ब्राम्हणे[6] < ब्रह्मणे

१. दे० हार्नले, ए० एफ० रुडोल्फ : ए कम्परेटिव ग्रामर ऑव दि गौडियन लैंग्वेजेज, लन्दन, १८८०, पृ० २१।

२. दे० दामोदर : उक्तिव्यक्तिप्रकरण, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि० सं० २०१०, भूमिका-भाग, पृ० ३।

३. दे० राहुल सांकृत्यायन : दोहाकोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, १९५०।

४. दे० अब्दुल रहमान : सन्देशरासक, भारतीय विद्या-भवन, बम्बई, वि० सं० २००१, भूमिका भाग, पृ० ७।

५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १७, प० १६।

६. दे० राहुल सांकृत्यायन : दोहाकोश, पृ० २ तथा डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के पास सुरक्षित सरह के दोहाकोश की फोटो-प्रतिलिपियाँ।

व् < व्

सन्धाभाषा का आदि व् व्यंजन आ० भा० आ० के आदि व् से उद्भूत है। जैसे :

वेमें[1] < वेदेन।

मध्यग ब्

व् < ब्

सन्धाभाषा का मध्यग व् आ० भा० आ० के मध्यग ब् का ही रूप है। जैसे :

सम्बित्ति[2] < सम्बित्ति

णिअम्वह[3] < नितम्बस्य

उपर्युक्त सम्बित्ति शब्द का संवित्ति रूप भी बागची के ही संस्करण में उपलब्ध होता है।[4]

ब् < य्

कहीं कहीं अन्तःस्थ य् से संयुक्त भ् (भ्य) के स्थान में भी भ् से संयुक्त ब् का प्रयोग सन्धाभाषा में मिलता है। जैसे .

लब्भइ[5] < लभ्यते

अब्भन्तर[6] < अभ्यन्तर

यहाँ ब+भ के संयुक्त रूप के द्वारा इस पद में मात्रा-समतोलन यथावत् हो जाता है।

---

१. दे० राहुल सांकृत्यायन दोहाकोश, पृ० २।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० १०।

३. दे० वही, पृ० १६, प० ७।

४. दे० वही, पृ० २१, प० ३२।

५. दे० वही, पृ० २६, प० ६३।

६. दे० वही, पृ० ३५, प० ८९।

मध्यग ब् के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि सन्धाभाषा मे उसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप मे नही मिलता। ओष्ठ्य म् तथा भ् व्यंजनों के साथ संयुक्त होकर ही वह प्रयुक्त होता है।

उपर्युक्त 'लब्भइ' शब्द का 'लद्भइ' रूप भी बागची के ही संस्करण में उपलब्ध होता है।[1]

आदि भ्

भ् < भ्

सन्धाभाषा का आदि भ् व्यंजन प्रा० भा० आ० के आदि भ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे :

भूअ[2] < भूत

भअवइ[3] < भगवती

भित्ति[4] < भित्ति

भमर[5] < भ्रमर इत्यादि।

मध्यग भ्

भ् < भ्

सन्धाभाषा का मध्यग भ् व्यंजन प्रा० भा० आ० के मध्यग भ् व्यंजन का ही रूप है। जैसे :

निभर[6] < निर्भर

अदभूआ[7] < अद्भुत इत्यादि।

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४५, प० ५६।

२. दे० वही, पृ० ३, प० १।

३. दे० वही, पृ० ५, प० १७।

४. दे० वही, पृ० ६, प० ६।

५. दे० वही, पृ० ३१, प० ७१।

६. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ५।

७. दे० वही, च० ३०।

अनुनासिक व्यंजन

मध्यग ङ्

ङ् < ङ्

सन्धाभाषा मे आदि ङ् के उदाहरण नही मिलते।

सन्धाभाषा का मध्यग ङ् अनुनासिक व्यंजन आ० भा० आ० के मध्यग ङ् अनुनासिक व्यंजन का ही रूप है। जैसे.

भङ्ग[1] < भङ्ग

ङ् < र

कही-कही सन्धाभाषा का मध्यग ङ् आ० भा० आ० के र् से निकला है। जैसे

माङ्गे[2] < मार्गे

इस उदाहरण मे समीकरण का रूप भी उपलब्ध होता है।

मध्यग ञ्

ञ् < ञ्

आदि ङ् की भाँति आदि ञ् के उदाहरण भी सन्धाभाषा मे नही मिलते। सन्धाभाषा का मध्यग ञ् आ० भा० आ० के मध्यग ञ् का ही रूप है। उसमे कोई परिवर्त्तन नही मिलता। जैसे

भञ्जण[3] < भञ्जन

णिरञ्जण[4] < निरञ्जन

सञ्चरइ[5] < सञ्चरति

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० १०।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।

३ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ५, प० १६।

४. दे० वही।

५. दे० वही, पृ० २० प० २५।

आदि ण्

ण < न्

आ० भा० आ० में आदि ण् नहीं मिलता। म० भा० आ० (प्राकृत) में आ० भा० आ० का आदि न् आदि ण् के रूप में परिवर्तित होने लगता है।[1] सन्धाभाषा का आदि ण आ० भा० आ० के आदि न् का ही मूर्द्धन्य रूप है। जैसे

णिरन्तर[2] < निरन्तर

णिम्मल[3] < निर्मल

णिव्वाणे[4] < निर्वाणेन

मध्यग ण्

ण < ण

सन्धाभाषा का मध्यग ण् आ० भा० आ० के मध्यग ण् का ही रूप है। जैसे

भणइ[5] < भणति

खणहि[5] < क्षणेहि

ण < न्

कहीं कहीं सन्धाभाषा का मध्यग ण् आ० भा० आ० के मध्यग न् से उद्भूत है। जैसे

१ दे० उपाध्याय, भरतसिंह, पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग २००८ वि०, पृ० ५५।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १३।

३ दे० वही, पृ० ८, प० ३४।

४ दे० वही, पृ० ३, प० ३।

५ दे० वही, पृ० ६, प० ३।

६ दे० वही पृ० ७, प० २७।

आणन्द[1] < आनन्द

विणासइ[2] ≤ विनश्यति इत्यादि।

न् के मूल रूप मे मिलने तथा ण् मे परिवर्तित हो जाने की प्रक्रियाओं को देखकर शहीदुल्ला ने सन्धाभाषा मे ण् तथा न् के प्रयोग के सम्बन्ध मे नियमो का अभाव माना है।[3]

आदि न्

न् < न्

सन्धाभाषा का आदि न् आ० भा० आ० के आदि न् का ही रूप है। जैसे

निति[4] < नित्य

नेउर[5] < नूपुर इत्यादि।

मध्यग न्

न् < न्

सन्धाभाषा का मध्यग न् आ० भा० आ० के मध्यग न् का ही रूप है। जैसे

आनन्दे[6] < आनन्दे

पानिआ[7] < पानीय

इन्दीअ[8] < इन्द्रिय इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ७, प० २७।

२ दे० वही, पृ० २६, प० ५३।

३ दे० Shahidullah, M Les Chants Mystiques पेरिस, १९२८, पृ० ३६।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ३३।

५. दे० वही, च० ११।

६. दे० वही, च० ३०।

७ दे० वही, च० ४३।

८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ५।

आदि म्

म् < म्

सन्धाभाषा का आदि म् आ० भा० आ० के आदि म् का ही रूप है। जैसे

महेसुर[1] < महेश्वर

मन्त[2] < मन्त्र

मण[3] < मन

महुअर[4] < मधुकर इत्यादि।

मध्यग म्

म् < म्

आदि म् की भाँति सन्धाभाषा का मध्यग म् आ० भा० आ० के मध्यग म् का ही रूप है। जैसे :

समाहि[5] < समाधि

भमर[6] < भ्रमर

कमल[7] < कमल

यहाँ उल्लेखनीय है कि हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के मध्यग म् के अनुनासिक व् (वँ) में परिवर्तित हो जाने का नियम निर्धारित किया है। उनके

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ६, प० २०।

२. दे० वही, पृ० ९, प० ६।

३. दे० वही, पृ० १०, प० १५।

४. दे० वही, पृ० ४१, प० ६।

५. दे० वही, पृ० ६, प० २३।

६. दे० वही, पृ० ३१, प० ७१।

७. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४।

उदाहरण के अनुसार कमल > कवँल तथा भ्रमर > भवँर हो जाता है।[१] पर, यह ध्यान देने की बात है कि सन्धाभाषा मे ऐसे उदाहरण नही मिलते। इससे प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन का विकास सिद्धो की सन्धाभाषा के बाद और हेमचन्द्र के पहले हुआ होगा।[२]

अन्तःस्थ वर्ण

सन्धाभाषा के अन्तःस्थ वर्ण आ० भा० आ० के अन्तःस्थ वर्णो के समान ही हैं, पर सिद्धो के काल मे उनके उदाहरण इतने लघु होते जा रहे थे कि बहुत स्थानो मे आ० भा० आ० के अन्तःस्थ वर्णो का लोप हो गया तथा उनके स्थान पर सन्धाभाषा मे किसी स्वर या व्यजन का आगम हो गया। श्रुति के प्रकरण मे इसपर आगे विचार किया गया है। यहाँ अन्तःस्थ वर्णों के इतिहास का विवेचन किया जाएगा।

पूर्वी प्रदेश के तद्भव शब्दो मे आ० भा० आ० का य ज मे परिवर्तित हो जाता है।[३] महाराष्ट्री अपभ्रंश मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है।[४] सन्धाभाषा मे भी य् अन्तःस्थ वर्ण का प्रयोग केवल तत्सम शब्दो मे ही हुआ है। अत, सन्धाभाषा मे य् का प्रयोग बहुत कम मिलता है।

आदि य

य् < य्

सन्धाभाषा की आदि य ध्वनि आ० भा० आ० की आदि य ध्वनि का ही रूप है। जैसे

योगी[५] < योगी

१ दे० हेमचन्द्र The Prakrit Grammar of Hemchandra, सम्पादक पी० एल० वैद्य पूना १९२८ पृ० १६१।

२ सिद्धो के काल निर्णय के सम्बन्ध मे यह बात बड़े महत्व की सिद्ध हो सकती है।

३ दे० उक्तिव्यक्तिप्रकरण, भारतीय विद्या भवन, बम्बई स० २०१० मे चटर्जी की भूमिका, पृ० ३।

४ दे० हीरालाल जैन सावयधम्मदोहा कारजा जैन प्रकाशन समिति कारजा १९३२ ई० भूमिका भाग पृ० ३२।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ११।

ब < ब

कुछ स्थलों में सन्धाभाषा का आदि ब आ० भा० आ० के आदि ब से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

बुद्ध[1] < बुद्ध

बुज्झइ[2] < बुध्यते

पिवन्ते[3] < पिबति इत्यादि।

मध्यग व

व < व

सन्धाभाषा का मध्यग व आ० भा० आ० के मध्यग व का ही रूप है। जैसे

लवणो[4] < लवण

णिवाण[5] < निर्वाण

पवण[6] < पवन इत्यादि।

व < प

कुछ स्थलों में सन्धाभाषा का मध्यग व आ० भा० आ० के मध्यग प से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

कावाली[7] < कापालिक

अवर[8] < अपर

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ५ प० १३।

२ दे० वही, पृ० ७ प० २७।

३ दे० वही पृ० २० प० २४।

४ दे० पा० टि० ५९५।

५ दे० बागची दोहाकोश पृ० १० प० १२।

६ दे० वही, पृ० ११, प० १८।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १८।

८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।

उवरइ[1] < उपचरित

कूव[2] < कूप इत्यादि ।

व् < र्

कहीं कहीं आ० भा० आ० के भ् के साथ संयुक्त र् (भ्र) के स्थान पर सन्धाभाषा में, भ् के साथ संयुक्त व् (ब्भ) की स्थिति मिलती है । जैसे

विब्भम[3] < विभ्रम

यहाँ व् तथा भ् के संयोग से मात्रा-समतोलन तथा वर्णों का स्थान-विपर्यय द्रष्टव्य है ।

ऊष्म वर्ण

ऊष्म वर्णों के अन्तर्गत आने वाले तालव्य श, मूर्द्धन्य ष तथा दन्त्य स के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि बागची के संस्करण में तालव्य श का प्रयोग एकदम नहीं मिलता । मूर्द्धन्य ष का प्रयोग भी नगण्य ही है । इसके विपरीत शास्त्री के संस्करण में तालव्य श तथा मूर्द्धन्य ष का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है ।[4] नीचे ऊष्म वर्णों का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है ।

आदि श्

श् < श्

सन्धाभाषा का आदि श् आ० भा० आ० के आदि श् का ही रूप है । जैसे :

सून[5] < शून्य

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८४ ।

२. दे० वही, पृ० १०, प० ८ ।

३. दे० वही, पृ० २०, प० २३ ।

४. अन्य प्राचीन ग्रन्थों की भाँति सन्धाभाषा के पदों पर भी लिपिकर्त्ताओं के व्यक्तिगत ज्ञान तथा क्षेत्र का प्रभाव है यह स्पष्ट प्रतीत होता है । यही कारण है कि इस साहित्य के सम्बन्ध में परस्पर खींचातानी होती रही है । इस सम्बन्ध में देखिए ' सावयधम्मदोहा, सम्पादक हीरालाल जैन, करंजा जैन सीरिज, १९३२ ई०, भूमिका, पृ० ३० ।

५. दे० शास्त्री: बौ० गा० दो० च० ३५ ।

शशी[1] < शशि
शिखर[2] < शिखर इत्यादि।

मध्यग श्

श् < श्

सन्धाभाषा का मध्यग श् आ० भा० आ० के मध्यग श् का ही रूप है। जैसे :

दशमि[3] < दशम

दिशइ[4] < दृश्यते

आकाश[5] < आकाश इत्यादि।

आदि ष्

ष < श्

सन्धाभाषा का आदि मूर्द्धन्य ष् आ० भा० आ० के आदि तालव्य श् से उद्भूत है। जैसे

षोहइ[6] < शोभते
षषहर[7] < शशधर।

ष् < स्

सन्धाभाषा का आदि मूर्द्धन्य ष् आ० भा० आ० के आदि दन्त्य स् का मूर्द्धन्य रूप है। जैसे :

षिद्धे[8] < सिद्धे।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा दो, च० ११।
२. दे० वही, च० ४७।
३. दे० वही, च० ३।
४. दे० वही, च० ४७।
५. दे० वही, च० ४१।
६. दे० वही, च० ४६।
७. दे० वही, च० २३।
८. दे० वही, च० ३३।

मध्यग ष्

ष < ष्

सन्धाभाषा का मध्यग ष् आ० भा० आ० के मध्यग ष का ही रूप है। जैसे

विषअ[1] < विषय

विषमा[2] < विषम

ष् < श्

सन्धाभाषा का मध्यग मूर्द्धन्य ष् आ० भा० आ० के मध्यग तालव्य श् का मूर्द्धन्य रूप है। जैसे :

पडवेषी[3] < प्रतिवेशी

ष् < स्

सन्धाभाषा का मध्यग मूर्द्धन्य ष् आ० भा० आ० के मध्यग दन्त्य स् का मूर्द्धन्य रूप है। जैसे

वाषणा[4] < वासना

यहा दोनो दन्त्य वर्ण (स, न) मूर्द्धन्य मे परिवर्तित हो गए हैं।

आदि स्

स् < स्

सन्धाभाषा का आदि स् आ० भा० आ० के आदि स का ही रूप है। जैसे

सअल[5] < सकल

सुह[6] <सुख इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३८।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १४।

३. दे० पा० टि०, ५९३।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४१।

५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० १।

६. दे० वही, पृ० १०, प० १३।

स् < श्

सन्धाभाषा का आदि दन्त्य स् आ० भा० आ० के आदि तालव्य श् से उद्भूत है। जैसे :

सुण्ण[1] < शून्य

ससि[2] < शशि

सीस[3] < शिष्य इत्यादि।

मध्यग स्

स् < स्

सन्धाभाषा का मध्यग स् आ० भा० आ० के मध्यग स् का ही रूप है। जैसे :

वसन्त[4] < वसन्त

वासिअ[5] < वासित

कुसुमिअ[6] < कुसुमित इत्यादि।

स् < श्

सन्धाभाषा का मध्यग दन्त्य स् आ० भा० आ० के मध्यग तालव्य श् से उद्भूत है। जैसे :

महेसुर[7] < महेश्वर

---

१. दे० बागची - दोहाकोश, पृ० ३, प० २।
२. दे० वही, पृ० २०, प० २५।
३. दे० वही, पृ० १३, प० ९।
४. दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।
५. दे० वही, पृ० ३२, प० ७६।
६. दे० वही, पृ० ४१, प० ६।
७. दे० वही, पृ० ६, प० २०।

दीसइ[1] < दृश्यते

पइसइ[2] < प्रविशति इत्यादि।

स् < ष्

सन्धाभाषा का मध्यग दन्त्य स् प्रा० भा० आ० के मध्यग मूर्द्धन्य ष् से उद्भूत है। जैसे :

विसअ[3] < विषय

भूसिअ[4] < भूषित

आदि ह्

ह् < ह्

सन्धाभाषा का आदि ह् प्रा० भा० आ० के आदि ह् का ही रूप है। जैसे

हुआसणेहिँ[5] < हुताशन

हंस[6] < हंस

हरेइ[7] < हरति

हरिणा[8] < हरिण इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ५।

२ दे० वही, पृ० ६, प० २।

३ दे० वही, पृ० ३, प० ५।

४ दे० वही, पृ० ४० प० ३।

५. दे० वही, पृ० ११, प० १८।

६ दे० वही, पृ० १४, प० ३।

७ दे० वही, पृ० ३७, प० ६७।

८. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।

मध्यम ह्

अपभ्रंश में महाप्राण व्यञ्जनों के स्थान पर ह् की स्थिति मिलती है।[1] सन्धाभाषा का मध्यग ह् महाप्राण व्यञ्जनों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऊष्म तथा संयुक्त वर्णों से उद्भूत है।

ह् < ह्

सन्धाभाषा का मध्यग ह् प्रा० भा० आ० के मध्यग ह् का रूप है। जैसे :

सहज[2] < सहज

गहण[3] < गहन

महेसुर[4] < महेश्वर इत्यादि।

ह् < ख्

सन्धाभाषा का मध्यग ह् प्रा० भा० आ० के मध्यग ख् महाप्राण व्यञ्जन से उद्भूत है। जैसे

महासुह[5] < महासुख

ह् < घ्

सन्धाभाषा का मध्यग ह् प्रा० भा० आ० के मध्यग घ महाप्राण व्यञ्जन से निकला है। जैसे

मेह[6] < मेघ

---

१ दे० हीरालाल जैन सावयधम्मदोहा, कारंजा, १९३२, भूमिका-भाग, पृ० ३२ तथा Shahidullah, M Les Chants mystiques, पेरिस, १९२८, पृ० ३५।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० १।

३ दे० वही, पृ० १९, प० २१।

४ दे० वही, पृ० ६, प० २०।

५. दे० वही, पृ० ६ प० २।

६. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० ३०।

ह < थ

संधाभाषा का मध्यग ह आ० भा आ० के मध्यग थ महाप्राण व्यंजन से उद्भूत है जैसे

अहवा[1] < अथवा

कहिअ[2] < कथित

ह < ध

संधाभाषा का मध्यग ह आ० भा० आ० के मध्यग ध महाप्राण व्यंजन से निकला है। जैसे

समाहि[3] < समाधि

महुअर[4] < मधुकर

ह < भ

संधाभाषा का मध्यग ह आ० भा० आ० के मध्यग भ महाप्राण व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

सहाव[5] < स्वभाव

तिहुअण < त्रिभुवन

ह < ग

संधाभाषा का मध्यग ह ऊष्मवर्ण आ० भा आ० के तालव्य ग ऊष्म वर्ण से निकला है। जैसे

णह[6] < दनाम

---

१ दे बागची दोहाकोष पृ० ३८ प० १४

२ दे० वही पृ० ३ प० ६

३ दे० वही पृ० ६ प० २ ।

४ दे० वही पृ० ४१ प० ६।

५ दे० वही, पृ० ५ प० १३।

६ दे० वही पृ० ३ प० ३।

७ दे० वही पृ० २४, प० ४३।

ह् < ष्

सन्धाभाषा का मध्यग ह् ऊष्म वर्ण प्रा० भा० आ० के मूर्द्धन्य ष् ऊष्म वर्ण से उद्भूत है। जैसे :

विहणु[1] < विष्णु

ह् < क्ष

सन्धाभाषा का मध्यग ह् ऊष्म प्रा० भा० आ० के मध्यग क्ष संयुक्त व्यंजन से निकला है। जैसे :

दाहिण[2] < दक्षिण

ह् < त्र

सन्धाभाषा का मध्यग ह् ऊष्म प्रा० भा० आ० के मध्यग त्र संयुक्त व्यंजन से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे :

णाह[3] < नात्र
कहिम्पि[4] < कुत्रापि

य श्रुति और व श्रुति

हेमचन्द्र का उद्धरण देते हुए, मध्यग तथा अन्त्य य् के उच्चारण के अपभ्रंश में लघुतर तथा लघुतम होने और हिन्दी में य् तथा व् अन्तःस्थ ध्वनियों के अत्यन्त लघु रूप में उच्चरित होने की प्रवृत्ति पर डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने प्रकाश डाला है।[5] लघु उच्चरित होने के कारण ये ध्वनियाँ स्वर

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २०।

२ दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० ५।

३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २४।

४ दे० वही, पृ० २१, प० ३०-३१।

५. दे० भारतीय साहित्य, सम्पादक : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, आगरा-हिन्दी-विद्यापीठ, द्वितीय अंक, अप्रैल १९५६, पृ० १४ में प्रकाशित लेख 'य और व का रागात्मक निरूपण'।

के बाद स्वर के उच्चारण के बीच श्रुति-रूप में उपलब्ध होती है। अपभ्रंश के शब्दों के बीच में आए हुए अल्पप्राण वर्णों के लोप तथा उनके स्थान में य-श्रुति की उपस्थिति की ओर हीरालाल जैन ने संकेत किया है।[1] सन्धा-भाषा में य-श्रुति के उदाहरण बहुत अधिक नहीं मिलते। निम्नांकित उदाहरणों में य-श्रुति का रूप देखा जा सकता है

णियडि[2] < णिअड (सम्भावित) < निकट (आ० भा० आ०)
तियड्डा[3] < तिअ[3] (,,) < त्रीणि (आ० भा० आ०)

उपर्युक्त उदाहरणों में मध्यग इ के बाद अ के उच्चारण के कारण य-श्रुति की स्थिति मिलता है।

व श्रुति के उदाहरण भी सन्धाभाषा में अधिक नहीं मिलते। निम्नांकित उदाहरणों में व-श्रुति मिलती है :

छेवइ[5] < छेअइ (सम्भावित) < छेदयति (आ० भा० आ०)
कूव[6] < कूअ (,,) < कूप (आ० भा० आ०)
कावाली[7] < काआलिअ (,,) < कापालिक (आ० भा० आ०)

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः मध्यग ए, ऊ तथा आ के बाद आ के उच्चारण के कारण व-श्रुति की स्थिति मिलती है।

श्रुति रूप में उपलब्ध होने के अतिरिक्त आ० भा० आ० की मध्यग तथा अन्त्य य् और व् ध्वनियाँ, लघु उच्चरित होने के कारण, सन्धाभाषा में प्रायः अ के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। जैसे

---

१ दे० हीरालाल जैन: सावयधम्मदोहा, कारंजा जैन प्रकाशन-समिति, १९३२, भूमिका, पृ० ३०।
२ दे० शास्त्री: बौ० गा० दो०, च० २।
३. दे० वही, च० ३४।
४ दे० वही, च० २८।
५. दे० वही, च० ४५।
६. दे० बागची: दोहाकोश, पृ० १०, प० ८।
७. दे० शास्त्री: बौ० गा० दो०, च० १८।

अ < य्

मध्यग स्थान में

आअअतण[1] < आयतन

णअण[2] < नयन

अन्त्य स्थान में

विसअ[3] < विषय

छाआ[4] < छाया

काआ[5] < काया इत्यादि।

अ < व्

मध्यग स्थान में

आ० भा० आ० की अन्त्य व् ध्वनि के अ में परिवर्तित होने के उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं मिलते। मध्यग व् ध्वनि के अ में परिवर्तित होने के उदाहरण निम्नांकित हैं

तरुअर[6] < तरुवर

तिहुअण[7] < त्रिभुवन

र् तथा ल् के लघु उच्चरित रूप

य् तथा व् के अतिरिक्त उक्त शेष दोनों अन्तःस्थ वर्णों के लघु उच्चरित होकर लुप्त हो जाने के उदाहरण भी सन्धाभाषा में मिलते हैं।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३, प० १।

२ दे० वही, पृ० ११, प० १०।

३ दे० वही, पृ० ३ प० ५।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४६।

५ दे० वही, च० १।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० १२।

७ दे० वही, पृ० ३, प० ३।

र् ध्वनि के लोप के उदाहरण सन्धाभाषा मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। कहीं यह लोप स्वतन्त्र रूप से होता है कहीं इस लोप के बाद मात्रा समतोलन के लिए या तो अवशिष्ट ध्वनि का द्वित्व हो जाता है, या वहा किसी अन्य ध्वनि का आगम हो जाता है। स्वतन्त्र रूप से इस ध्वनि के लोप के उदाहरण निम्नांकित हैं

वम्हा[1] < ब्रह्मा

भन्ति[2] < भ्रान्ति

माग[3] < मार्ग इत्यादि।

मात्रा-समतोलन के लिए द्वित्व हो गए तथा नई ध्वनियों के आगमवाले उदाहरण ये हैं

णिव्वाण[4] < निर्वाण

णिम्मल[5] < निर्मल

कम्म[6] < कर्म

रंधा[7] < रन्ध्र इत्यादि।

प्रथम तीन उदाहरणों मे समीकरण की स्थिति उपलब्ध होती है तथा अन्तिम उदाहरण मे र् के लोप होने पर अ का आगम हो जाता है।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ६ प० २०।

२ दे०, वही पृ० ११, प १५।

३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १७।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० [illegible], प० ३।

४ दे० वही, पृ ६ प० ११।

५ दे० वही, पृ० ६, प० २५।

७. दे० वही, पृ० ११, प० १४।

ल्

ल् ध्वनि के लोप के उदाहरण सन्धाभाषा मे बहुत कम मिलते हैं। इस ध्वनि का लोप समीकरण के नियम के अनुसार ही होता है। जैसे :

कप्प[1] < कल्प

अन्य व्यंजनों के अस्पृष्ट अथवा कुछ विवृत उच्चारण

अन्तःस्थ वर्णो की भाँति सन्धाभाषा में आ० भा० आ० के कुछ स्पर्श व्यंजन भी कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर अ तथा कभी-कभी ह्रस्व इ के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं।[2] मूर्द्धन्य वर्णो को छोड़ कर आ० भा० आ० के प्रायः सभी अल्पप्राण स्पर्श व्यंजनो के अ मे परिवर्तित होने के उदाहरण सन्धाभाषा मे उपलब्ध होते हैं। ब् ध्वनि इसका अपवाद है। इसके अ मे परिवर्तित होने के उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं मिलते। यह ध्वनि प्रायः व् मे परिवर्तित हो जाती है, जिसका विवेचन पीछे किया जा चुका है।[3]

अनुनासिक वर्णो मे केवल ् के कुछ विवृत रूप मे उच्चरित होकर अ मे परिवर्तित होने का उदाहरण सन्धाभाषा मे मिलता है।

नीचे इन ध्वनियो के परिवर्तन का विवरण दिया जाता है। इनके सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि आ० भा० आ० की आदि ध्वनियों के कुछ विवृत रूप नही मिलते। यह परिवर्तन केवल मध्यग तथा अन्त्य ध्वनियो में ही होता है।

क्

अ < क्

सन्धाभाषा मे आ० भा० आ० की मध्यग तथा अन्त्य क् ध्वनि कुछ विवृत रूप म उच्चरित होने लगती है तथा अन्ततः वह अ में परिवर्तित हो जाती है। जैसे :

---

१. दे० वही, पृ० २६, प० ५२।

२. दे० शहीदुल्ला· Les Chants Mystiques, पेरिस, १९२८, पृ० ३५।

३. दे० यह अध्याय (पीछे)।

(मध्यग क्)

सअल[1] < सकल

दिवाअर[2] < दिवाकर

(अन्त्य क्)

अलिआ[3] < अलीको

सवाअ[4] < अवाक्

ग्

अ < ग

आ० भा० आ० की मध्यग ग ध्वनि भी सन्धाभाषा में कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर अ में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

भअवइ[5] < भगवती

गअण[6] < गगन

जोइणि[7] < योगिनी

साअर[8] < सागर इत्यादि।

च्

अ < च

आ० भा० आ० की मध्यग च् ध्वनि सन्धाभाषा में ह्रस्व अ तथा इ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३ प० १।
२ वही पृ० ३७ प० ९८।
३ दे वही, पृ० ६, प० २।
४ दे० वही, पृ० ११, प० १५।
५ दे० वही, पृ० ५, प० १७।
६ दे० वही पृ० ११, प० १६।
७ दे० वही, पृ० १८, प० १९।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४२।

विआर[१] < विचार

वअण[२] < वचन

इ < च

अइरिअ < आचार्य[३]

ज्

अ < ज्

आ० भा० आ० की मध्यग ज ध्वनि सन्धाभाषा में कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर अ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

रअणि[४] < रजनी

भोअण[५] < भोजन

गअवर[६] < गजवर

त

अ < त

आ० भा० आ० की आदि तथा मध्यग त ध्वनि कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर सन्धाभाषा में अ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

(मध्यग त)

चउत्थ[७] < चतुर्थ

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५ प० १४।

२ दे० वही, पृ० ६ प० ५।

३ दे० वही, पृ० ११, प० ४ तथा उससे मिलाइए शहीदुल्ला, पृ० ३५, पंक्ति ३३।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।

५ दे० वही, पृ० १६ प० ८।

६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १७।

७ दे० बागची · दोहाकोश, पृ० १६, प० ११।

काअर[1] < कातर

(अन्त्य त्)

भुअ[2] < भूत

चिअ[3] < चित्त

द्

अ < द्

आ० भा० आ० की मध्यग तथा अन्त्य द् ध्वनि कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर सन्धाभाषा में अ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे :

(मध्यग द्)

उइअ[4] < उदित

उएस[5] < उपदेश

(अन्त्य द्)

पाअ[6] < पाद

दूसरे उदाहरण में प का भी लोप हो गया है।

प्

अ < प्

आ० भा० आ० की मध्यग प् ध्वनि कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर सन्धाभाषा में अ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

नउर[7] < नूपुर

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ४२।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० १।

३, दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३५।

४ दे० पा० टि०, ६६८।

५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २५।

६. दे० वही, पृ० ३, प० ६।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।

म्

अ < म्

आ० भा० आ० की मध्यग म् ध्वनि सन्धाभाषा में कुछ विवृत रूप में उच्चरित होकर अ में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

जउना[1] < यमुना।

संयुक्त व्यंजन

सन्धाभाषा में संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ उनका वितरण अक्षरात्मक (Syllabic) ढंग से किया गया है। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप हम देखते हैं कि सन्धाभाषा में, शब्दों के आदि स्थान में संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग बहुत ही सीमित संख्या में हुआ है। आदि स्थान में संयुक्त व्यंजन रखने वाले शब्दों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि तद्भव रूपों में केवल अघोष स्पर्श व्यंजनों का ही परस्पर संयोग हुआ है। स्पर्श के साथ किसी अन्य वर्ग के व्यंजन का संयोग केवल तत्सम रूपों में ही उपलब्ध होता है। आदि स्थान में केवल पाँच संयुक्त व्यंजन उपलब्ध होते हैं, जो निम्नांकित हैं

आदिस्थान वाले संयुक्त व्यंजन

क्ख

क्ख < क्ष

सन्धाभाषा का आदि क्ख संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के क्ष से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

क्खअ[2] < क्षय

क्खेतु[3] < क्षत्र

क्खण[4] < क्षण इत्यादि।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २१, प० ३०-३१।

३. दे० वही, पृ० २५, प० ४८।

४. दे० वही, पृ० ३६, प० ६६।

क्ल

क्ल < क्ल

सन्धाभाषा का आदि क्ल संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के क्ल से उद्भूत है। जैसे

क्लेश[1] < क्लेश

तत्सम रूप होने के कारण ही यहाँ स्पर्श के साथ अन्तःस्थ वर्ण का संयोग हुआ है।

च्छ

च्छ < छ

सन्धाभाषा का च्छ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के छ से उद्भूत है। जैसे

च्छड्डु[2] < छर्दय

यहाँ उल्लेखनीय है कि संस्कृत छर्दय का प्राकृत रूप छड्ड है,[3] परन्तु यहाँ द्वित्व ड् व्यंजन (ड्ड) से एक ड् के स्थान पर च् का आगम हो गया है। अवशिष्ट ड् ध्वनि का रूप भी उत्क्षिप्त हो गया है।

द्व

द्व < द्व

सन्धाभाषा का आदि द्व संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के द्व का ही सुरक्षित रूप है। जैसे

द्वादश[4] < द्वादश

तत्सम रूप होने के कारण यहाँ भी स्पर्श तथा अन्तःस्थ वर्ण का संयोग मिलता है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४९।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० १११।

३ दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो प्रथम संस्करण, कलकत्ता, १६२८ ई०।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३४।

स्व

स्व < स्व

सन्धाभाषा का आदि स्व संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के स्व का ही रूप है। जैसे

स्वपण[1] < स्वप्न

मध्य तथा अन्त्य स्थानों के संयुक्त व्यंजनों के प्रसंग में हम देखेंगे कि सन्धाभाषा में अघोष तथा सघोष ध्वनियों का परस्पर संयोग प्राय नहीं होता। आदि स्थान के संयुक्त व्यंजनों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं परन्तु सघोष ल् अन्तःस्थ तथा अघोष स् ऊष्म वर्ण के साथ क्रमश अघोष क् तथा सघोष व् वर्णों के संयोग के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। जैसे

क्लेश[2] तथा स्वपणे[3]।

मध्य स्थान में

सन्धाभाषा में मध्यग संयुक्त व्यंजनों की संख्या सत्रह है। इनके सम्बन्ध में, जैसा बाबूराम सक्सेना ने उल्लेख किया है[4], यह ज्ञातव्य है कि अघोष तथा सघोष ध्वनियाँ परस्पर संयुक्त नहीं होतीं। परन्तु पंचमाक्षर, सघोष होते हुए भी, अघोष वर्णों के साथ संयुक्त हो सकते हैं। सन्धाभाषा के संयुक्त व्यंजनों की तीसरी प्रधान विशेषता यह है कि दो महाप्राण ध्वनियाँ एक साथ संयुक्त नहीं होतीं। इनकी चौथी विशेषता यह है कि सघोष अल्पप्राण स्पर्श सघोष महाप्राण स्पर्श के साथ ही संयुक्त होता है तथा अघोष अल्पप्राण स्पर्श अघोष महाप्राण स्पर्श के साथ। संस्कृत में म् तथा न् हकार के बाद प्रयुक्त होते हैं, पर सन्धाभाषा में पहले ही। यह सन्धाभाषा के संयुक्त व्यंजनों की पाँचवीं मुख्य विशेषता है। आगे सन्धाभाषा के मध्यग संयुक्त व्यंजनों का इतिहास दिया जाता है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३।
२ दे० पा० टि०, ६८३।
३ दे० पा० टि०, ६८७।
४ दे० बाबूराम सक्सेना सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि०, पृ० ५६।

क्ख

क्ख < क्ष

सन्धाभाषा का मध्यग क्ख संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के क्ष से उद्भूत है। जैसे

भक्खइ[1] < भक्षयति
लक्खिअउ[2] < लक्षित

क्ख < ख्य

सन्धाभाषा का मध्यग क्ख संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ख्य से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

वक्खाण[3] < व्याख्यान

क्ख < ष्क

सन्धाभाषा का मध्यग क्ख संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ष्क से उद्भूत है। जैसे

पोक्खर[4] < पुष्कर

च्छ

च्छ < च्छ

सन्धाभाषा का मध्यग च्छ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के च्छ से उद्भूत है। जैसे

पुच्छइ[5] < पृच्छति।

---

१ द० बागची दोहाकोश पृ० ६ प० २४।
२ द० वही पृ० २, प० ३६।
३ द० वही, पृ० २६, प० ५१।
४ द० वही, पृ० ८०, प० ३।
५ दे० वही, पृ० ३, प० २।

ज्झ

ज्झ < ध्य

सन्धाभाषा का मध्यग ज्झ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ध्य से उद्भूत है। जैसे

वुज्झइ[1] < बुध्यते
सिज्झइ[2] < सिध्यते

न्च

न्च < ञ्च

सन्धाभाषा का मध्यग न्च संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ञ्च का सुरक्षित रूप है। जैसे

सञ्चरइ[3] < सञ्चरति

न्ज

ञ्ज < ञ्ज

सन्धाभाषा का मध्यग ञ्ज संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ञ्ज का सुरक्षित रूप है। जैसे

णिरञ्जण[4] < निरञ्जन
सञ्जइअ[5] < सञ्जायते

ट्ठ

ट्ठ < स्थ

सन्धाभाषा का मध्यग ट्ठ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के स्थ से उद्भूत है। जैसे

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ७, प० २९।
२. दे० वही, पृ० १९, प० २१।
३. दे० वही, पृ० २०, प० २१।
४. दे० वही पृ० ३, प० ३।
५. दे० वही, पृ० [illegible], प० [illegible]।

उट्ठिअ[1] < उत्थितो

यहाँ दन्त्य वर्णों का मूर्द्धन्यीकरण हो गया है।

ट्ठ < स्थ

सन्ध्याभाषा का मध्यग ट्ठ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के स्थ से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

परिट्ठओ[2] < परिस्थित

ट्ठ < ष्ट

सन्ध्याभाषा का मध्यग ट्ठ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ष्ट से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

दिट्ठओ[3] < दृष्ट

ण्ड

ण्ड < ण्ड

सन्ध्याभाषा का मध्यग ण्ड संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ण्ड का सुरक्षित रूप है। जैसे

मण्डल[4] < मण्डल

पण्डिय[5] < पण्डित

त्थ

त्थ < स्त

सन्ध्याभाषा का मध्यग त्थ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के स्त से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

वित्थार[6] < विस्तार

---

१ दे० बागची दोहाकोष पृ० ६ प० ६।

२ दे० वही पृ० २५, प० ४८।

३ दे० वही पृ० ४०, प० ३।

४ दे० वही, पृ० १६, प० ११।

५ दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।

६. दे० वही, पृ० ३८, प० १०७।

त्थ < स्थ

सन्धाभाषा का मध्यग त्थ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के स्थ से उद्भूत है। जैसे

महत्थल[1] < महस्थल

द्ध

द्ध < द्ध

सन्धाभाषा का मध्यग द्ध संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के द्ध का सुरक्षित रूप है। जैसे

सिद्धन्त[2] < सिद्धान्त

द्ध < ध्य

सन्धाभाषा का मध्यग द्ध संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ध्य से उद्भूत है। जैसे

सिद्धइ[3] < सिध्यति

न्ड

न्ड < ण्ड

सन्धाभाषा का मध्यग न्ड संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ण्ड से उद्भूत है। जैसे

कुन्डल[4] < कुण्डल

चन्डाली[5] < चाण्डाली

यहाँ मूर्धन्य वर्ण दन्त्य वर्ण में परिवर्तित हो गया है।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० २७, प० ५६।

२ दे० वही पृ० ३३ प० ८०।

३ दे० वही, पृ० ६ प० २३।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।

५ दे० वही, च० ४७।

न्त

न्त < न्त

सन्ध्याभाषा का मध्यग न्त संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्त का सुरक्षित रूप है। जैसे

णिरन्तर[1] < निरन्तर

न्द

न्द < न्द

सन्ध्याभाषा का मध्यग न्द संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्द का सुरक्षित रूप है। जैसे

इन्दीअ < इन्द्रिय

न्ध

न्ध < न्ध

सन्ध्याभाषा का मध्यग न्ध संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्ध का सुरक्षित रूप है। जैसे

अन्धार[3] < अन्धकार

म्भ

म्भ < म्य

कहीं कहीं भ के साथ संयुक्त य (म्य) के स्थान पर सन्ध्याभाषा में म् के साथ संयुक्त भ (म्भ) की स्थिति उपलब्ध होती है। जैसे

लम्भइ[4] < लभ्यते

१ दे बागची दोहाकोश पृ० ५ प० १३

२ दे वही पृ० प ५।

३ दे वही पृ० १ प २ ।

४ दे वही पृ० २६, प० ६ ।

म्भ

म्भ < म्भ

सन्धाभाषा का मध्यग म्भ संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के म्भ का ही सुरक्षित रूप है। जैसे

गम्भीर[1] < गम्भीर

म्ह

म्ह < ह्म

सन्धाभाषा का मध्यग म्ह संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के ह्म का ही रूप है। जैसे

बम्हण[2] < ब्राह्मण

यहाँ वर्ण-विपर्यय का स्वरूप भी उपलब्ध होता है।

व्भ

व्भ < भ्य

कहीं कहीं भ के साथ संयुक्त य् (भ्य) के स्थान पर सन्धाभाषा में व् के साथ संयुक्त भ् (व्भ) की स्थिति भी उपलब्ध होती है। जैसे

लव्भइ[3] < लभ्यते

व्भ < भ्र

सन्धाभाषा में, भ् के साथ संयुक्त र् (भ्र) के स्थान पर व् के साथ संयुक्त भ् (व्भ) की स्थिति भी मिलती है। जैसे

विव्भम[4] < विभ्रम

यहाँ व् के आगम द्वारा मात्रा समतोलन भी यथावत् हो गया है।

---

१ द० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५।

२ दे० बागची दोहाकोष पृ० २५ प० ४६

३ दे० पा० टि०, ६७६।

४ दे० बागची दोहाकोष पृ० २०, प० २३।

अन्त्य स्थान में

सन्धाभाषा में अन्त्य संयुक्त व्यंजनों की संख्या बीस है। मध्यग संयुक्त व्यंजनों में जो प्रमुख विशेषताएँ मिलती हैं[1], वे सभी विशेषताएँ अन्त्य संयुक्त व्यंजनों में भी उपलब्ध होती हैं। अन्त्य संयुक्त व्यंजनों का इतिहास नीचे दिया जा रहा है।

क्ख

क्ख < क्ष

सन्धाभाषा का अन्त्य क्ख संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के क्ष व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

पच्चक्ख[2] < प्रत्यक्ष।

क्ख < क्ष्य

सन्धाभाषा का अन्त्य क्ख संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के क्ष्य से उद्भूत है। जैसे

लक्ख[3] < लक्ष्य

देक्खि[4] < द्रक्ष्य

क्त

क्त < क्त

सन्धाभाषा का अन्त्य क्त संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के क्त का ही रूप है। जैसे :

मुक्ता[5] < मौक्तिक

---

१. दे० यह अध्याय (पीछे)।

२. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १९, प० २०।

३. दे० वही, पृ० २९, प० ६५।

४. दे० वही पृ० १०, प० ७।

५. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ११।

ङ्ग

ङ्ग < ङ्ग

सन्धाभाषा का अन्त्य ङ्ग संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के ङ्ग का ही रूप है। जैसे

तुरङ्ग[1] < तुरङ्ग

पअङ्ग[2] < पतङ्ग

च्छ

च्छ < च्छ

सन्धाभाषा का अन्त्य च्छ संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के च्छ संयुक्त व्यंजन का ही रूप है। जैसे

इच्छे[3] < इच्छाम्

पिच्छी < पुच्छ।

च्छ < त्स

सन्धाभाषा का अन्त्य च्छ संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के त्स संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

कुच्छ[5] < कुत्स

च्छ < थ्य

सन्धाभाषा का अन्त्य च्छ संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के थ्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

मिच्छ[6] < मिथ्या

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १, प० ८।

२ दे० वही, पृ० ३१ प० ७१।

३ दे० वही पृ० ३ प० ४।

४ दे० वही, पृ० १६ प० ८।

५ दे० वही पृ० ४१, प० १०।
बागची ने किञ्चित् से कुच्छ का उद्भव माना है पर इस मत के पक्ष में कोई आधार उपलब्ध नहीं होता।

६ दे० वही, पृ० ३, प० ४।

ज्झ

ज्झ < ध्य

सन्ध्याभाषा का अन्त्य ज्झ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ध्य से उद्भूत है। जैसे,

मज्झे[1] < मध्ये

ञ्च

ञ्च < ञ्च

सन्ध्याभाषा का अन्त्य ञ्च संयुक्त आ० भा० आ० के ञ्च का रूप है। जैसे

पञ्च[2] < पञ्च

ञ् के साथ च् वर्ण का संयोग केवल तत्सम शब्दों में ही उपलब्ध होता है।

ट्ठ

ट्ठ < थ

सन्ध्याभाषा का अन्त्य ट्ठ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के थ से उद्भूत है। जैसे

चउट्ठ[3] < चतुर्थ

ट्ठ < ष्ट

सन्ध्याभाषा का अन्त्य ट्ठ संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ष्ट संयुक्त व्यंजन से निकला है। जैसे

कुदिट्ठि[4] < कुदृष्टि

---

१. द० बागची दो० कोष, पृ० १० प० १।

२. द० वही पृ० ८१ ७।

३. द० वही, पृ० ४०, प० ५।

४. द० वही, पृ० ७ प० ६६।

ण्ड

ण्ड < ण्ड

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ड संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के ण्ड संयुक्त व्यंजन का ही रूप है। जैसे

दण्डी[1] < दण्डि

ण तथा ड वर्णों का संयोग केवल तत्सम शब्दों में ही मिलता है।

ण्ह

ण्ह < ह्ण

सन्धाभाषा का ण् के साथ संयुक्त ह् (ण्ह) प्रा० भा० आ० के ह् के साथ संयुक्त ण (ह्ण) का रूप है। इसमें वर्णों का परस्पर विपर्यय हो गया है। जैसे

कान्हु[2] < काह्णु

त्थ

त्थ < थ

सन्धाभाषा का त्थ संयुक्त व्यंजन प्रा० भा० आ० के थ् व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

णत्थु[3] < नाथ

त्थ < र्थ

सन्धाभाषा का त्थ प्रा० भा० आ० के र्थ से निकला है। जैसे

चउत्थ[4] < चतुर्थ

परमत्थ[5] < परमार्थ

---

१ दे० बागची दोहाकोष पृ० १४, प० २।

२ दे० वही, पृ० ८१, प० १०।

३ दे० वही पृ० ८८ प० २३।

४ दे० वही पृ० १६ प० ११।

५ दे० वही पृ० ६ प० ३।

त्थ < न्थ

सन्ध्याभाषा का त्थ आ० भा० आ० के न्थ से उद्भूत है। जैसे

पत्था[1] < पन्था

त्थ < स्त

सन्ध्याभाषा का त्थ आ० भा० आ० के स्त से उद्भूत है। जैसे

अत्थ[2] < अस्त

वत्थु[3] < वस्तु

त्थ < स्त्र

सन्ध्याभाषा त्थ आ० भा० आ० के स्त्र से निकला है। जैसे

सत्थ[4] < शास्त्र

त्थ < त्र

सन्ध्याभाषा का त्थ आ० भा० आ० के त्र से निकला है। जैसे

जत्थु[5] < यत्र

द्ध

द्ध < द्ध

सन्ध्याभाषा का द्ध संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के द्ध संयुक्त व्यंजन का ही रूप है। जैसे

सुद्ध[6] < शुद्ध

बद्धा[7] < बद्ध इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६ प० ।

२ दे० वही, पृ० ११, प० १५।

३ दे० वही, पृ० २६, प० ५२।

४ दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।

५ दे० वही, पृ० २१, प० २६।

६ दे० वही, पृ० ५, प० १३।

७ दे० वही, पृ० १०, प० १३।

न्त < न्त्र

सन्धाभाषा का अन्त्य न्त संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्त्र संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

मन्ते[1] < मन्त्र

न्त < त्

कहीं कहीं संस्कृत के अनुकरण पर अन्त्य त् के बदले न्त रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है। जैसे

पिवन्ते[2] < पिवति

यहाँ अकारण नासिक्यीकरण की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है।

न्त < न्

संस्कृत के अनुकरण पर कहीं कहीं अन्त्य न के बदले न के साथ संयुक्त त (न्त) का व्यवहार सन्धाभाषा में मिलता है। जैसे

सरन्ता[3] < सरन्

न्द

न्द < न्द

सन्धाभाषा का अन्त्य न्द संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्द का ही रूप है। जैसे

मअरन्द[4] < मकरन्द

अरविन्द[5] < अरविन्द

---

१ दे० बागची दोहाकोष, पृ० ९, प० ६।

२ दे० वही, पृ० २०, प० २४।

३ दे० वही पृ० २० प० ६४।

४ दे० वही, पृ० ८१, प० ६।

५ दे० वही।

न्द < न्द्र

कहीं कहीं, सरलीकरण के लिए अन्त्य न्, द् तथा र् के संयुक्त रूप (न्द्र) से अन्तस्थ र् का लोप हो जाता है तथा उसके स्थान में केवल न् और द् का संयुक्त रूप (न्द) ही सन्धाभाषा में उपलब्ध होता है। जैसे

चन्द[1] < चन्द्र

न्ध

न्ध < न्ध

सन्धाभाषा का अन्त्य न्ध संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के न्ध का ही रूप है। जैसे

कन्ध[2] < स्कन्ध

रन्धा[3] < रन्ध्र इत्यादि।

अन्तिम उदाहरण में र् के लोप की क्षति पूर्ति अ के आगम द्वारा हो जाती है।

म्ब

म्ब < म्ब

सन्धाभाषा का अन्त्य म्ब संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के म्ब का रूप है। जैसे

णिअम्ब[4] < नितम्ब

म्ह

म्ह < ह्म

सन्धाभाषा का म्ह संयुक्त व्यंजन आ० भा० आ० के ह्म संयुक्त व्यंजन का रूप है। जैसे

बम्हा[5] < ब्रह्मा

यहाँ वर्णों का परस्पर विपर्यय हो गया है।

---

१. दे० बागची दोहाकोश पृ ११, प० १७।
२. दे० वही, पृ० ३, प० १।
३. दे० वही, पृ० ११, प० १४।
४. दे० वही, पृ० १६, प० ७।
५. दे० वही, पृ० ६, प० २०।

ह्न

ह्न < ह्न

सन्धाभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार न् के बाद ह् आना चाहिए परन्तु कुछ तत्सम शब्दों में ह् के बाद न् का प्रयोग (ह्न) भी उपलब्ध होता है। जैसे :

चिह्न[1] < चिह्न

ह्म

ह्म < ह्म

सन्धाभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार म् के बाद ह् आता है, परन्तु कुछ तत्सम शब्दों में ह् के बाद म् (ह्म) का प्रयोग भी मिलता है। जैसे

ब्रह्म[2] < ब्रह्म

सन्धाभाषा में उपलब्ध संयुक्त व्यजनों के विवेचन के बाद नीचे आ० भा० आ० के तीन प्रमुख संयुक्त व्यजनों (क्ष, श्र, ज्ञ) का विवेचन किया जाता है। ये तीनों संयुक्त व्यंजन अपने मूल रूप में सन्धाभाषा में बहुत कम मिलते हैं। काल क्रम से परिवर्तित होकर वे जिन रूपों में सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं उनका विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

आ० भा० आ० की ध्वनि का विवेचन

क्ष ध्वनि के सुरक्षित रूप

क्ष < क्ष

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की क्ष ध्वनि अपने मूल रूप में केवल एक जगह मिलती है :

विलक्षण[3] < विलक्षण

यहाँ उल्लेखनीय है कि यह संयुक्त ध्वनि अपने मूल रूप में केवल तत्सम शब्द में ही मिलती है, तद्भव में नहीं।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २।

२ दे० वही, च० ४७।

३ दे० वही, च० २७।

क्ष ध्वनि के परिवर्तित रूप

ख < क्ष

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की आदि, मध्यग तथा अन्त्य क्ष ध्वनियाँ ख् में परिवर्तित हो जाती हैं। जैसे :

आदि क्ष

खिति[1] < क्षिति

मध्यग क्ष

भखअ[2] < भक्षयति

अन्त्य क्ष

मोख[3] < मोक्ष

पखा[4] < पक्ष

क्ख < क्ष

कहीं-कहीं क्ष के परिवर्तित रूप ख् के साथ क् का आगम हो जाता है, जिससे आ० भा० आ० की क्ष ध्वनि सन्धाभाषा में क् तथा ख् के संयुक्त रूप (क्ख) में परिवर्तित हो जाती है।

जैसे :

आदि क्ष

क्खेत्तु[5] < क्षेत्र

मध्यग क्ष

अक्खर[6] < अक्षर।

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ११, प० १८।
२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २१।
३. दे० वही, च० ११।
४. दे० वही, च० ४।
५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २५, प० ४८।
६. दे० वही, पृ० ३५, प० ६०।

अन्त्य क्ख

मोक्ख[1] < मोक्ष

छ् < क्ष

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की आदि क्ष संयुक्त ध्वनि छ् स्पर्श ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

छार[2] < क्षार

मध्यग तथा अन्त्य क्ष के छ् में परिवर्तित होने के उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं मिलते।

आ० भा० आ० की त्र ध्वनि का विवेचन

त्र के सुरक्षित रूप

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की त्र ध्वनि अपने मूल रूप में एक स्थान पर उपलब्ध होती है

त्रिदण्डी[3] < त्रिदण्डी

यहाँ उल्लेखनीय है कि सरह के दोहों की जो तिब्बती फोटो प्रतिलिपियाँ डा० प्रसाद के पास सुरक्षित थीं उनमें उपर्युक्त प्रसंग में त्र के स्थान पर त का ही प्रयोग मिला है।[4] यह परिवर्तन सन्धाभाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल पड़ता है। अतः सन्धाभाषा में त्र ध्वनि का अपने मूल रूप में मिलना चिन्त्य है।

त्र के परिवर्तित रूप

आदि त्र

त् < त्र

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की आदि त्र ध्वनि आदि त में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

---

१ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४ प० १०।

२ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ११।

३ दे० बागची : दोहाकोश पृ० १८, प० ३।

४ दे० पा० टि० २५७।

तेलोए[1] < त्रैलोक्य
तिहुअण[2] < त्रिभुवन
तुट्टइ[3] < त्रुट्यति

अन्त्य त्र

त् < त्र

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की अन्त्य त्र ध्वनि अन्त्य त् में परिवर्तित हो जाता है। जैसे :

तन्त[4] < तन्त्र
मन्त[5] < मन्त्र

त्थ < त्र

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की अन्त्य त्र ध्वनि त्थ संयुक्त ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जैसे :

एत्थ[6] < अत्र
तत्थु[7] < तत्र

ह् < त्र

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की अन्त्य त्र ध्वनि कभी कभी ह् ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। जैसे :

कहिँ[8] < कुत्र
तह[9] < तत्र

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४३।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १३।
३. दे० वही, पृ० ११, प० १५।
४. दे० वही, पृ० २०, प० २३।
५. दे० वही।
६. दे० वही, पृ० २३, प० ३६।
७. दे० वही, पृ० २६, प० ५४।
८. दे० वही, पृ० ३६, प० ९१।
९. दे० वही, पृ० २१, प० ७०।

आ० भा० आ० की मध्यग त्र ध्वनि के परिवर्तित रूपों के उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं पाए जाते हैं।

आ० भा० आ० की ज्ञ ध्वनि का विवेचन

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की ज्ञ ध्वनि अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं होती। उसके परिवर्तित रूपों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

आदि ज्ञ

ज् < ज्ञ

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की आदि ज्ञ ध्वनि ज् में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

जाण[1] < ज्ञान

मध्यग ज्ञ

ग् < ज्ञ

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की मध्यग ज्ञ ध्वनि ग् में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

पगोपाअ[2] < प्रज्ञोपाय

ण < ज्ञ

सन्धाभाषा में आ० भा० आ० की मध्यग ज्ञ ध्वनि ण् में परिवर्तित हो जाती है। जैसे

विणाणा[3] < विज्ञान

अन्त्य ज्ञ ध्वनि के परिवर्तित रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते।

द्वित्व व्यंजन

आदि स्थान में

संयुक्त व्यंजनों की भांति, शब्दों के आदि स्थान में पाए जाने वाले द्वित्व व्यंजनों की संख्या सन्धाभाषा में बहुत ही सीमित है। उनके केवल दो उदाहरण मिलते हैं।

---

१ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १९, प० ८।

२ दे० वही, पृ० ६ प० २३।

३ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो, च० ४६।

ण्ण

ण्ण < न्

सन्धाभाषा का आदि ण्ण द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के न व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

ण्णउ[1] < न

स्स

स्स < श्

सन्धाभाषा का आदि स्स द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के तालव्य श से निकला है। जैसे :

स्सन्ति[2] < शान्ति

मध्य स्थान में

मध्य स्थान वाले द्वित्व व्यंजनों की संख्या ग्यारह है। इनके सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि इनमें केवल अल्पप्राण ध्वनियों का ही द्वित्वीकरण हुआ है, महाप्राण ध्वनियों का नहीं। पंचमाक्षरों में केवल ओष्ठ्य म् का ही द्वित्व रूप मिलता है। मूर्द्धन्य ण का द्वित्व रूप आदि तथा अन्त्य स्थानों में मिलता है, परन्तु मध्य स्थान में नहीं। नीचे मध्य स्थान वाले द्वित्व व्यंजनों का विवरण दिया जाता है।

क्क

क्क < क्त

सन्धाभाषा का मध्यग क्क द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के क्त संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

मुक्कउ[3] < मुक्त

क्क < ष्क

सन्धाभाषा का मध्यग क्क आ० भा० आ० के ष्क संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

णिक्कलंक[4] < निष्कलंक

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ७।

२ दे० वही, पृ० ९ प० ६।

३ दे० वही, पृ० ३७, प० १००।

४ दे० वही, पृ० ३३, प० ८१।

ग्ग

ग्ग < ग्र

सन्धाभाषा का मध्यग ग्ग प्रा० भा० आ० के ग्र संयुक्त व्यंजन से निकला है। जैसे :

सामग्गिए[1] < सामग्र्या

ग्ग < ज्ञ

सन्धाभाषा का मध्यग ग्ग प्रा० भा० आ० के ज्ञ से उद्भूत है। जैसे

पग्गोपाअ[2] < प्रज्ञोपाय

च्च

च्च < च्च

सन्धाभाषा का मध्यग च्च द्वित्व व्यंजन प्रा० भा० आ० के च्च से उद्भूत है। जैसे

णिच्चलु[3] < निश्चल

च्च < त्य

सन्धाभाषा का मध्यग च्च प्रा० भा० आ० के त्य से उद्भूत है। जैसे

पच्चन्तह[4] < प्रत्यन्त

च्च < ज्

सन्धाभाषा का मध्यग च्च आ० भा० आ० के ज् से निकला है। जैसे

वच्चइ[5] < व्रजति

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४१, प० [illegible]

२. दे० वही, पृ० ६, प० २३।

३. दे० वही, पृ० ३०, प० २.।

४. दे० वही, पृ० १९, प० २०।

५. दे० वही, पृ० १२, प० ६।

ज्ज

ज्ज < ज्ज

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के ज्ज का ही रूप है। जैसे

मज्जइ[1] < मज्जति

ज्ज < ज्

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के ज का ही द्वित्व रूप है। जैसे

रज्जइ[2] < राजते

ज्ज < र्ज

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के ज सयुक्त व्यजन से निकला है। जैसे

दुज्जण[3] < दुर्जन

यहाँ समीकरण का रूप भी उपलब्ध होता है।

ज्ज < ज्

कहीं कहीं सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के ज् सयुक्त व्यजन से उद्भूत है। जैसे

वज्जधर[4] < वज्रधर

यह परिवर्तन भी समीकरण का उदाहरण है।

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४५, प० २८।

२ दे० वही, पृ० २४, प० ८३।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३२।

४ दे० बागची दोहाकोश पृ० १३, प० ७।

ज्ज < य

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के य् अन्तस्थ वर्ण से उद्भूत है। जैसे

विलिज्जइ[1] < विलीयते

करिज्जइ[2] < क्रियते

ज्ज < ज्य

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के ज्य से निकला है। जैसे ·

पिज्जइ[3] < पूज्यते

ज्ज < द्

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के द् से उद्भूत है। जैसे .

खज्जइ[4] < खादति

ज्ज < द्य

सन्धाभाषा का मध्यग ज्ज आ० भा० आ० के द्य से उद्भूत है। जैसे ·

उअज्जइ[5] < उत्पद्यते

ट्ट

ट्ट < ट्य

सन्धाभाषा का मध्यग ट्ट द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के ट्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे .

तुट्टइ[6] < त्रुट्यति

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६ प० ३२।

२. दे० वही, पृ० ३२ प० ७७।

३. दे० वही, पृ० २६, प० ६५।

४. दे० वही, पृ० ३४, प० ८४।

५. दे० वही, पृ० २६, प० ५२।

६. दे० वही, पृ० ११, प० १२।

ट्ट < त्त

स धाभाषा का मध्यग ट्ट आ० भा० आ० के त्त से उद्भूत है। जैसे

वट्टइ[1] < वर्तते

य । ह्य वर्ण का मूर्द्ध यीकरण हो गया है।

त्त

त्त ~ त

स धाभाषा का मध्यग त्त द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के त व्यजन से निकला है। जैसे

आअत्तण[2] < आयतन

यहा त का अकारण ही द्वित्वीकरण हो गया है।

द्द

द्द < द्व

सधाभाषा का मध्यग द्द द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के द्व सयुक्त व्यजन से उद्भूत है। जैसे

अद्दअ[3] < अद्वय

यह परिवत्तन समीकरण का उदाहरण है।

म्म

म्म < म

सधाभाषा का म्म द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के म सयुक्त व्यजन से उद्भूत है। जसे

णिम्मल[4] < निर्मल

यहा भी समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

---

१ दे बागची दोहाकोश पृ० १२ प० ६।

२ दे वही पृ० ३ प १।

३ दे० वही पृ० ३ प० ६।

४ दे० वही पृ० ४ प० ११।

ल्ल

ल्ल < लं

सन्ध्याभाषा का मध्यग ल्ल द्वित्व व्यंजन प्रा० भा० आ० के ल संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

दुल्लक्ख[1] < दुलक्ष्य

समीकरण का रूप यहां भी प्राप्त होता है।

ल्ल < ल्प

सन्ध्याभाषा का मध्यग ल्ल द्वित्व व्यंजन प्रा० भा० आ० ल्प संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है जैसे

सल्लता[2] < शल्पता

यहां भी समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

व्व

व्व < र्व

सन्ध्याभाषा का मध्यग व्व द्वित्व व्यंजन प्रा० भा० आ० के र् तथा व् के संयुक्त रूप (र्व) से उद्भूत है। जैसे

णिव्वाणे[3] < निर्वाणे

व्व < द्व

कहीं-कहीं सन्ध्याभाषा का व्व प्रा० भा० आ० के द्व से उद्भूत है। जैसे

समुव्वहइ[4] < समुद्वहति

---

१ दे० बागची दोहकोश, पृ० ३४, प० --।

२. दे० वही, पृ० २, प० ७५।

३. दे० वही, पृ० ६ प० २२।

४ दे० वही, पृ० ८०, प० १।

स्स

स्स < श्य

सन्धाभाषा का स्स द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के श्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

दीसइ[1] < दृश्यते

यह परिवर्तन समीकरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अन्त्य स्थान में

अन्त्य स्थान में प्रयुक्त द्वित्व व्यंजनों की संख्या बारह है। आदि तथा मध्यग द्वित्व व्यंजनों में महाप्राण वर्णों के द्वित्वीकरण के उदाहरण नहीं मिलते। अन्त्य द्वित्व व्यंजनों में महाप्राण मूर्द्धन्य ठ् ध्वनि के द्वित्व रूप का उदाहरण उपलब्ध होता है। अन्त्य द्वित्व व्यंजनों का विवरण नीचे दिया जाता है।

क्क

क्क < क्

सन्धाभाषा का अन्त्य क्क द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के क् व्यंजन का द्वित्व रूप है। जैसे

एक्क[2] < एक

यहाँ क् का अकारण ही द्वित्वीकरण हो गया है।

क्क < र्क

सन्धाभाषा का अन्त्य क्क आ० भा० आ० के र्क से उद्भूत है। जैसे

तक्क[3] < तर्क

क्क < क्र

सन्धाभाषा का अन्त्य क्क आ० भा० आ० के क्र से उद्भूत है। जैसे

चक्क[4] < चक्र

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८१।
२ दे० वही, पृ० १७, प० १३।
३ दे० वही, पृ० १६ प० ११।
४ दे० वही, पृ० १६, प० ११।

क्क < क्त

सन्धाभाषा का अन्त्य क्क आ० भा० आ० के क्त से उद्भूत है। जैसे

मुक्को[1] < मुक्त

क्क < क्व

सन्धाभाषा का अन्त्य क्क आ० भा० आ० के क्व संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

पक्क[2] < पक्व

यहाँ समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

ग्ग

ग्ग < ग्न

सन्धाभाषा का अन्त्य ग्ग द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के ग्न संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे

णग्गा[3] < नग्न

ज्ज

ज्ज < ज्ज

सन्धाभाषा का अन्त्य ज्ज द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के ज्ज द्वित्व व्यंजन का रूप है। जैसे

णिलज्ज[4] < निलज्ज

ज्ज < र्य

सन्धाभाषा का अन्त्य ज्ज आ० भा० आ० के र तथा य के संयुक्त रूप (र्य) से उद्भूत है। जैसे

कज्ज[5] < कार्य

सुज्ज[6] < सूर्य

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० २४ प० ४३

२ दे० वही पृ० ४०, प० २।

३ दे० वही पृ० १६, प० ७।

४ दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।

५ दे० वही पृ० ३२, प० ७६।

६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, प० १४।

ज्ज < द्य

सन्धाभाषा का अन्त्य ज्ज आ० भा० आ० के द्य से उद्भूत है। जैसे

वेज्ज[1] < वैद्य

ट्ठ

ट्ठ < ष्ट

सन्धाभाषा का अन्त्य द्वित्व ट्ठ आ० भा० आ० के ष्ट से उद्भूत है। जैसे :

दिट्ठ[2] < दृष्ट

पइट्ठ < प्रविष्ट

सन्धाभाषा में एकमात्र ठ ही वह महाप्राण ध्वनि है, जिसका द्वित्व रूप उपलब्ध होता है।

ण्ण

ण्ण < ण्

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ण द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के ण् व्यंजन का द्वित्व रूप है। जैसे

तिण्ण[4] < त्रीणि

यहाँ ण ध्वनि का अकारण ही द्वित्वीकरण हो गया है।

ण्ण < र्ण

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ण आ० भा० आ० के र्ण से उद्भूत है। जैसे

वण्ण[5] < वर्ण

सपुण्ण[6] < सम्पूर्ण

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० १०, प० ७।

२ दे० वही, पृ० १६, प० ८।

३ दे० वही, पृ० ४१, प० ११।

४ दे० वही, पृ० २३, प० २६।

५ दे० वही पृ० २०, प० २५।

६ दे० वही, पृ० ११, प० १।

ण्ण < न्न

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ण आ० भा० आ० के न्न का मूर्द्धन्य रूप है। जैसे :

भिण्णा[1] < भिन्ना

ण्ण < न्य

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ण आ० भा० आ० के न्य संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे :

अण्ण[2] < अन्य

सुण्ण[3] < शून्य

ण्ण < ण्य

सन्धाभाषा का अन्त्य ण्ण आ० भा० आ० के ण्य से उद्भूत है। जैसे :

पुण्ण[4] < पुण्य

यहाँ समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

त्त

त्त < त्त

सन्धाभाषा का अन्त्य त्त आ० भा० आ० के त्त का रूप है। जैसे :

वित्त[5] < वित्त

त्त < त्र

सन्धाभाषा का अन्त्य त्त आ० भा० आ० के त्र से उद्भूत है। जैसे :

मत्त[6] < मात्र

विचित्त[7] < विचित्र

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ११, प० १६।
२. दे० वही, पृ० १६, प० ११।
३. दे० वही, पृ० ३, प० २।
४. दे० वही, पृ० २६, प० ६५।
५. दे० वही, पृ० २, प० ३।
६. दे० वही, पृ० ३, प० ५।
७. दे० वही, पृ० २६, प० ५२।

त्त < त्य

सन्धाभाषा का अन्त्य त्त आ० भा० आ० के त्य से निकला है। जैसे

णित्त[1] < नित्य

त्त < त्व

सन्धाभाषा का अन्त्य त्त आ० भा० आ० के त्व से निकला है। जैसे

तत्त[2] < तत्त्व

त्त < क्त

सन्धाभाषा का अन्त्य त्त आ० भा० आ० के क्त से उद्भूत है। जैसे :

भत्ति[3] < भक्ति

यहाँ भी समीकरण का रूप मिलता है।

द्द

द्द < द्र

सन्धाभाषा का अन्त्य द्द द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के द् तथा र् के संयुक्त रूप (द्र) से उद्भूत है। जैसे

सुद्द[4] < शूद्र

यहाँ समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

प्प

प्प < त्म

सन्धाभाषा का अन्त्य प्प द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के त्म संयुक्त व्यंजन से निकला है। जैसे

अप्पा[5] < आत्मन्

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २० प० २४।

२. दे० वही, पृ० ३ प० ७।

३. दे० वही, पृ० २६, प० ५७।

४ दे० वही, पृ० २५, प० ४६।

५. दे० वही, पृ० १०, प० ७।

प्प < ल्प

सन्धाभाषा का अन्त्य प्प आ० भा० आ० के ल्प संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे :

कप्प[1] < कल्प

यह परिवर्त्तन समीकरण के नियमों के अनुसार हुआ है।

म्म

म्म < न्म

सन्धाभाषा का अन्त्य म्म द्वित्व व्यंजन आ० भा० आ० के न्म संयुक्त व्यंजन से उद्भूत है। जैसे :

जम्म[2] < जन्म

म्म < र्म

सन्धाभाषा का अन्त्य म्म आ० भा० आ० के र्म से उद्भूत है। जैसे :

कम्म[3] < कर्म

धम्म[4] < धर्म

इन उदाहरणों में समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

ल्ल

ल्ल < ल्य

सन्धाभाषा का अन्त्य ल्ल आ० भा० आ० के ल्य से उद्भूत है। जैसे :

तुल्ले[5] < तुल्य

यहाँ समीकरण का रूप उपलब्ध होता है।

---

१. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२।

२. दे० वही, पृ० ७, प० २८।

३. दे० वही, पृ० ६, प० २५।

४. दे० वही, पृ० ९, प० २।

५. दे० वही, पृ० १४, प० ३।

व्व

व्व < द्व

सन्धाभाषा का अन्त्य व्व द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के र तथा व के संयुक्त रूप (र्व) से उद्भूत है। जैसे।

सव्व[1] < सर्व

गव्व[2] < गर्व

ये दोनों उदाहरण समीकरण का रूप प्रस्तुत करते हैं।

व्व < द

सन्धाभाषा का अन्त्य व्व द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के द से उद्भूत प्रतीत होता है। जैसे

जव्व[3] < यदा

तव्व[4] < तदा

स्स

स्स < श्य

सन्धाभाषा का अन्त्य स्स द्वित्व व्यजन आ० भा० आ० के तालव्य श् तथा य के संयुक्त रूप (श्य) से उद्भूत है। जैसे

अवस्स[5] < अवश्य

यहाँ समीकरण के साथ-साथ तालव्य ध्वनि के दन्त्य में परिवर्तित होने का उदाहरण उपलब्ध होता है।

---

१ दे० बागची दोहाकोष पृ० २ प० ७७।

२ दे० वही पृ० ४० प० १।

३ दे० वही पृ० २५ प० ४६।

४ दे० वही।

५ दे० वही पृ० ३२ प० ७५।

स्स < ष्य

सन्धाभाषा का अन्त्य स्स आ० भा० आ० के ष्य से उद्भूत है। जैसे

सिस्स[1] < शिष्य

यहाँ भी समीकरण के साथ-साथ मूर्द्धन्य ध्वनि के दन्त्य मे परिवर्तन का उदाहरण उपलब्ध होता है।

आगे की तालिका द्वारा संयुक्त तथा द्वित्व व्यंजनों के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सकता है। उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनियों का प्रयोग संयुक्ताक्षरों मे नहीं होने के कारण उन्हें इस तालिका में स्थान नहीं दिया गया है।

---

१ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० १०, प० ८।

आदि स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के साथ संयुक्त होने वाले वर्ण

प्रथमाक्षर	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
क		✓													
ख															
घ															
च							✓								
छ															

प्रथमाक्षर	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
द														✓
ध														
न														
प														
फ														
ब														
भ														
म														
य														

प्रथमाक्षर		ष	स	ह
क				
ख				
ग				
घ				
ङ				
च				
छ				
ज				

झ				
ञ				
ट				
ठ				
ड				
ण				
त				
थ				
द				

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
ध				
न				
प				
फ				
ब				
भ				
म				

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
य				
र				
ल				
व				
श				
ष			✓	
स			✓	
ह				

✓चिह्न से सम्बद्ध प्रथमाक्षर के साथ उस कोष्ठक के वर्ण का संयोग सूचित होता है तथा रिक्त कोष्ठक दोनों के संयोग की अनुपस्थिति प्रकट करते हैं।

प्रथमाक्षर	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
द															
ध															
न													✓		
प															
फ															
ब															
भ															
म															
य															

मध्य स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के बाद संयुक्त होनेवाले वर्ण

प्रथमाक्षर	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
क														
ख														
ग														
घ														
ङ														
च														
छ														

प्रथमाक्षर	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
द			✓	✓										✓
ध														
न	✓		✓	✓										
प														
फ														
ब									✓					
भ														
म									✓	✓				
य														

मध्य स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के साथ संयुक्त होनेवाले वर्ण

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
क				
ख				
ग				
घ				
ङ				
च				
छ				
ज				

ग				
ञ				
ट				
ठ				
ड				
ढ				
ण				
त				
थ				
द				

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
ध				
न				
प				
फ				
ब				
भ				
म				✓

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
य				
र				
ल				
व				
श				
ष				
स				
ह			✓	

✓चिह्न से सम्बद्ध प्रथमाक्षर के साथ उस कोष्ठक के वर्ण का सयोग सूचित होता है तथा रिक्त कोष्ठको से दोनो के सयोग की अनुपस्थिति प्रकट होती है।

अन्त्य स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के साथ सयुक्त होने वाले वर्ण

प्रथमाक्षर	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
क	✓	✓													
ख															
ग			✓												
घ															
ङ			✓												
च							✓								
छ															

अन्त्य स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के बाद संयुक्त होनेवाले वर्ण

प्रथमाक्षर	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
क	√													
ख														
ग														
घ														
ङ														
च														
छ														

प्रथमाक्षर	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
द			✓	✓						✓				
ध														
न	✓		✓	✓										
प						✓								
फ														
ब														
भ														
म								✓		✓				
य														

र														
ल													√	
व														√
श														
ष														
स														
ह					√					√				

अन्त्य स्थान की तालिका

प्रथमाक्षर के साथ सयुक्त होनेवाले वर्ण

प्रथमाक्षर	श	ष	स	ह
क				
ख				
ग				
घ				
ङ				
च				
छ				
ज				

प्रथमाक्षर	श	प	स	ह
ध				
न				
प				
फ				
ब				
भ				
म				

य					
र					
ल					
व					
श					
ष					
स				✓	
ह					

✓चिह्न से सम्बद्ध प्रथमाक्षर के साथ उस कोष्ठक के वर्ण का सयोग सूचित होता है तथा रिक्त कोष्ठको से दोनो के संयोग का अनुपस्थिति प्रकट होती है।

समीकरण

सन्धाभाषा मे व्यजनो के समीकरण के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। द्वित्व व्यजनो के प्रकरण मे समीकरण वाले रूपो की ओर सकेत किया जा चुका है। यहाँ उन्हे एक स्थान पर रख कर उनके सम्बन्ध मे थोडा-सा विवेचन किया जाएगा। इन रूपो के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि इनमे प्राय अन्त स्थ वर्ण ही समीकरण को प्राप्त हुए हैं। अन्त स्थ वर्णों के साथ जब स्पर्श या कोई अन्य अन्त स्थ वर्ण सयुक्त होने लगता है, तब अन्त स्थ वर्ण समीकरण को प्राप्त होते है। समीकरण के जितने उदाहरण सन्धाभाषा मे उपलब्ध है, उनमे केवल दो को छोड शेष सभी मे अन्त.स्थ वर्णो का ही समीकरण हुआ है। पहले अन्त स्थ वर्णों के समीकरण का विवेचन नीचे किया जाता है।

य् का समीकरण

सन्धाभाषा मे अन्त:स्थ य् ध्वनि लघु उच्चरित होने लगती है और अन्तत अपनी पार्श्ववर्त्ती ध्वनि के रूप मे परिवर्तित होकर समीकरण को प्राप्त होती है। जैसे

ज् < य्

पिज्जइ[1] < पूज्यते

रज्जइ[2] < रज्यते

ट् < य्

तुट्टइ[3] < त्रुट्यति

ण् < य्

पुण्ण[4] < पुण्य

त् < य्

णित्त[5] < नित्य

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २० ।

२ दे० वही, पृ० २३, प० ३६ ।

३ दे० वही, पृ० २६, प० ५१ ।

४. दे० वही, पृ० ४०, प० ३ ।

५ दे० वही, पृ० ३, प० २ ।

ल् < य्

मल्लना[1] < शल्यता

यहाँ अन्तःस्थ ध्वनि (य) का अन्तःस्थ ध्वनि (ल्) मे ही समीकरण हुआ है। अन्य उदाहरणो मे अन्तःस्थ ध्वनि का स्पर्श वर्णों के साथ समीकरण हुआ है।

र् का समीकरण

अन्तःस्थ य ध्वनि की भाँति मध्यभाषा की अन्तःस्थ र् ध्वनि भी अपनी पार्श्ववर्ती ध्वनि के रूप मे परिवर्तित हो कर समीकरण को प्राप्त होती है। जैसे

क् < र्

तक्क[2] < तर्क

चक्क[3] < चक्र

ज् < र्

वज्जधर[4] < वज्रधर

दुज्जण[5] < दुर्जन

ण् < र्

वण्ण[6] < वर्ण

द् < र्

सुद्द[7] < शूद्र

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२, प० ७५।

२ दे० वही, पृ० १६, प० ११।

३ दे० वही।

४ दे० वही, पृ० १३, प० ७।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २।

७ दे० वही, पृ० २४, प० ६६।

म् < र

कम्म[1] < कर्म

व् < र

सव्व < सर्व

गव्व[2] < गर्व

ल का समीकरण

अन्तस्थ ल ध्वनि भी सन्धाभाषा मे अपनी पाश्ववर्ती ध्वनि मे परिवर्तित होकर समीकरण को प्राप्त होती है। इस ध्वनि के समीकरण का केवल एक उदाहरण उपलब्ध होता है। जैसे

प् < ल

कप्प < कल्प

व् का समीकरण

अन्तस्थ व ध्वनि के समीकरण के उदाहरण भी सन्धाभाषा मे बहुत कम मिलते हैं। समीकरण को प्राप्त होकर यह ध्वनि क तथा द स्पर्श ध्वनियो मे परिवर्तित हो जाती है। जैसे

क् < व्

पक्क[5] < पक्व

द् < व

अद्दअ < अद्वय

---

१ दे० बागची दोहाकोष पृ० ६ प० २१।
२ दे० वही, पृ० ३२ प० ७७।
३ दे० वही पृ० ८० प० १।
४ दे० वही पृ० २६ प० ५२।
५ दे० वही पृ० ८० प० २।
　दे० वही पृ०　प० ६।

स्पर्श क् तथा अनुनासिक न् का समीकरण

अन्तस्थ वर्णों के अतिरिक्त स्पर्श क तथा अनुनासिक न ध्वनियाँ भी, सन्ध्याभाषा मे क्रमशः अपनी पार्श्ववर्ती त तथा म ध्वनियों मे परिवर्तित होकर समीकरण को प्राप्त होती हैं। इनके एक एक उदाहरण सन्ध्याभाषा मे उपलब्ध होते है। जैसे

त < क

भत्ति[1] < भक्ति

म < न्

नम्म[2] < जन्म

यम (Gemination)

सन्ध्याभाषा मे क ज तथा ण् न त न ध्वनियों का यम हो जाता है। कही तो यह यम की क्रिया स्वतन्त्र रूप से होती है तथा कही क्षतिपूरक के रूप मे होती है।

स्वतन्त्र यम

क्क < क

स्वतन्त्र रूप से ध्वनियों के यम का केवल एक उदाहरण सन्ध्याभाषा मे उपलब्ध होता है जहा क ध्वनि का यम प्राप्त होता है। जैसे

एक्क[3] < एक

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० २६ प० ५७

२ दे० वही पृ० ७ प० २८।

३ दे० वही पृ० १७ प० १।

क्षतिपूरक यम्

कहीं कहीं आ० भा० आ० के दीर्घ वर्णों के सन्धाभाषा में ह्रस्व हो जाने पर क्षतिपूरक रूप में परवर्ती वर्ण का यम् हो जाता है। जैसे :

ज्ज < ज   रज्जइ[1] < राजते

ज्ज < य   विलिज्जइ[2] < विलीयते

ण्ण < ण   तिण्ण[3] < त्रीणि

---

१ दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८३ ।

२ दे० वही, पृ० ४६, प० ३२ ।

३ दे० वही, पृ० २३, प० ३६ ।

द्वितीय खण्ड

पद-विचार

१. संज्ञा
२. सर्वनाम
३. विशेषण
४ संख्यावाचक विशेषण
५ क्रिया-विशेषण
६. क्रिया
७. कृदन्त
८. उपसर्ग
९ परसर्ग

सन्धाभाषा के संज्ञा रूप

संज्ञाओं के मूलरूपों (Stems) का विवेचन

मूलरूपों की दृष्टि से सन्धाभाषा के संज्ञा-रूपों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा के प्राय: सभी संज्ञा-रूप स्वरान्त है। व्यंजनान्त संज्ञा-रूप का केवल एक उदाहरण शास्त्री के संस्करण में मिलता है

वाक्[1]

स्वरान्त संज्ञा रूपों में अन्त्य स्वर के रूप में, निम्नांकित स्वर सन्धाभाषा में मिलते हैं

अँ, अ, आ, इ ई, उ, ए तथा ओ।

अपभ्रंश के संज्ञा रूप प्राय: अ कारान्त होते हैं।[2] सन्धाभाषा के संज्ञा-रूप भी मुख्यत: अ कारान्त हैं। अन्त्य वर्णों के रूप में अन्य स्वरों की स्थिति सन्धाभाषा में मिलती है, पर उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है तथा कुछ की संख्या सर्वथा नगण्य है। वस्तुत, सन्धाभाषा में उपलब्ध स्वरान्त संज्ञा-रूपों में पचास प्रतिशत से अधिक रूप अ कारान्त ही हैं। नीचे इन रूपों का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

अँ-कारान्त संज्ञा-रूप

अनुनासिक अँ कारान्त संज्ञा-रूप का केवल एक उदाहरण शास्त्री के संस्करण में उपलब्ध होता है

मासँ[3]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४०।

२ दे० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश, पूना, १९४८, पृ० १०४ In Apbhramsa we find that the number of stems is practically reduced to one type—the a—ending one

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ४४।

अ-कारान्त संज्ञा रूप

सन्धाभाषा मे अ-कारान्त संज्ञा रूपों की संख्या सबसे अधिक है। इनमे से कुछ रूप नीचे दिए जाते हैं :

अणहु[१] (अनहद)
अमिअ[२] (अमृत)
आस[३] (आशा)
इन्दिअ[४] (इन्द्रिय)
उएस[५] (उपदेश)
कज्ज[६] (कार्य)
काज[७] (कार्य)
कापुर[८] (कपूर)
खसम[९] (आकाश के समान)
गअण[१०] (गगन)
छार[११] (क्षार)
जाण[१२] (ज्ञान)
निलअ[१३] (निलय)
पावत[१४] (पवत)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १६।
२ दे० वही, च० २१।
३. दे० वही, च० १।
४. दे० वही, च० ३१।
५. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० २०, न० २५।
६. दे० वही, प० ३२, प० ७६।
७. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० २६।
८. दे० वही, च० २८।
९ दे० वही, च० ४३।
१०. दे० वही, च० ८।
११. दे० वही, च० ११।
१२. दे० वही, च० २०।
१३. दे० वही, च० ६।
१४. दे० वही, च० २८।

मअ[1] (मद)
माग[2] (मार्ग)
मिअ[3] (मृग)
मूसअ[4] (चूहा)
लोण[5] (लवण)
विराअ[6] (विराग)
सोण[7] (शून्य तथा सोना)
हिअ[8] (हृदय) इत्यादि।

आ-कारान्त संज्ञा रूप

सन्धाभाषा के संज्ञा-रूपों में, संख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान आकारान्त रूपों का है। सन्धाभाषा के लगभग सत्रह प्रतिशत संज्ञा रूप आकारान्त हैं। उनमें से कुछ रूप निम्नांकित हैं

अणहा[9] (अनाहत)
अमिआ[10] (अमृत)
आसा[11] (आशा)
करिणा[12] (हाथी)

---

१ दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च ६।
२ दे० वही, च० १४।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६ प० ६१।
४. दे० पा० टि०, ५।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४६, प० ३२।
६ दे०, वही पृ० ३४, प० ८५।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४१।
८ दे० वही, च० २८।
९. दे० वही, च० १७।
१० दे० वही, च० ३९।
११ दे० वही, च० ४।
१२. दे० वही, च० ६।

चक्का[1] (चक्र)
चीरा[2] (वस्त्र)
नाहा[3] (नाथ)
पवणा[4] (पवन)
भअवा[5] (भगवान)
मुसा[6] (चूहा)
सीसा[7] (शिष्य)
हथा[8] (हाथ)
हरिणा[9] (हरिण) इत्यादि।

ह्रस्व इ कारान्त संज्ञा रूप

सन्ध्याभाषा के संज्ञा रूपों में ह्रस्व इ कारान्त रूपों की संख्या आ-कारान्त रूपों की संख्या से कुछ कम है। सन्ध्याभाषा के लगभग चौदह प्रतिशत संज्ञा-रूप इ-कारान्त हैं। इनमें से कुछ रूप निम्नांकित हैं

अवधूइ[10] (अवधूती)
अन्धारि[11] (अन्धकार)
आखि[12] (आख)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।
२ दे० वही च० ४।
३ दे० वही, च० १५।
४ दे० वही च० २१।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १७।
६ दे० पा० टि०, ३३।
७ दे० पा० टि० १।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ४१।
९ दे० वही, च० ६।
१० दे० वही, च० २७।
११ दे० वही च० ५०।
१२ दे० वही, च० १५।

आगि[1] (अग्नि)
खुन्टि[2] (खूँटी)
गिरि[3] (पर्वत)
घरिणि[4] (गृहिणी)
जोइनि[5] (योगिनी)
दिहि[6] (दिशा)
भतारि[7] (पति)
राति[8] (रात्रि)
बोहि[9] (बोधि)
सजि[10] (शैया) इत्यादि।

दीर्घ ई कारान्त संज्ञा रूप

सन्धाभाषा में दीर्घ ई कारान्त संज्ञा रूपों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। इसके लगभग नौ प्रतिशत रूप दीर्घ ई कारान्त हैं, जिनमें से कुछ निम्नांकित हैं

अवधूती[11] (अवधूती)
कुमारी[12] (अविवाहित कन्या)

---

१ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४७।
२ दे० वही, च० ८।
३ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४४, प० २५।
४ दे० वही, पृ० ४२, प० १३।
५ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४।
६ दे० वही, च० २५।
७ दे० वही, च० २०।
८ दे० वही, च० २।
९ दे० वही, च० ५।
१० दे० वही, च० २८।
११ दे० वही, च० १७।
१२ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २७, प० ५८।

घरिणी[१] (गृहिणी)

जोइणी[२] (योगिनी)

तान्ती[३] (तन्त्री)

नइरी[४] (नगरी)

पिन्छी[५] (पूँछ)

सनी[६] (शशि)

शिआली[७] (शृगाल का स्त्रीलिंग रूप)

हरिणी[८] (हरिण का स्त्रीलिंग रूप) इत्यादि।

हृस्व उ कारान्त रूप

मध्यभाषा के हृस्व उ कारान्त सज्ञा-रूपो की सख्या दीर्घ ई कारान्त रूपो मे थोडी कम है। मध्यभाषा मे ये रूप लगभग आठ प्रतिशत मिलते है। इनम से कुछ निम्नाकित है

काण्हु[९] (कण्हपा)

गुरु[१०]

चिहु[११] (चिह्न)

जनु[१२] (जल)

---

१ दे० पा टि० ७१।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७।
३ दे० वही च० १७।
४ दे० वही च ४१।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६ प० ८।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।
७ दे० वही च ५०।
८ दे० वही च० ६।
९. दे० वही, च० १०।
१०. दे० वही, च० १।
११. दे० वही च० २६।
१२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१, प० ७२।

तणु[1] (तन)
परमाणु[2] (छोटे कण)
मणु[3] (मन)
रसु[4] (रस)
विन्दु[5] (बिन्दु)
सुनु[6] (शून्य) इत्यादि।

ए-कारान्त सज्ञा-रूप

सन्धाभाषा मे ए कारान्त सज्ञा-रूपो की सख्या बहुत कम है। इसके लगभग दो प्रतिशत रूप ए-कारान्त हैं। अपभ्रश मे अन्त्य ए ध्वनि इ ध्वनि मे परिवत्तित होने लगी थी।[7] सम्भवत, इसीसे स धाभाषा मे ए-कारान्त सज्ञा रूप कम मिलते है। सन्धाभाषा के कुछ ए-कारान्त सज्ञा रूपो के उदाहरण निम्नाकित हैं

तैलोए[8] (त्रलोक्य)
माइए[9] (माता)
जउतके[10] (यौतुक)
अरविदए[11] (कमल) इत्यादि।

---

१ दे० वही, पृ० २५, प० ४६।
२ दे० वही पृ० २८, प० ६१।
३ दे० वही, पृ० ३२, प० ७७।
४ दे० वही, पृ० २७, प० ५६।
५ दे० पा० टि०, ३।
६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६०।
७ दे० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्र श, पूना, १९४८ पृ० ५१।
८ दे० शास्त्री, बौ० गा० दो च० ४२।
९ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८४
१० दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १६।
११ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१, प० ६।

ओ-कारान्त संज्ञा रूप

अपभ्रंश की ओ ध्वनि ह्रस्व उ ध्वनि में परिवर्तित होती है।[1] अतः, सन्धाभाषा में ओ-कारान्त संज्ञा-रूपों की संख्या बहुत कम मिलती है। इसके लगभग १ प्रतिशत रूप ओ कारान्त हैं। इनमें से कुछ निम्नांकित हैं

णाहो[2] (नाथ)

लवणो[3] (नमक)

सिद्धो[4] (सिद्ध)

इन रूपों से यह स्पष्ट है कि आ० भा० आ० की अन्त्य विसर्ग ध्वनि सन्धाभाषा में ओ ध्वनि रूप में वर्तमान है।[5]

संज्ञा रूपों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दीर्घ ऊ कारान्त संज्ञा रूप सन्धाभाषा में एकदम नहीं मिलते। अन्य दीर्घस्वरान्त संज्ञा रूपों की संख्या भी सन्धाभाषा में अपेक्षाकृत बहुत कम है। अपभ्रंश-काल में सभी दीर्घान्त स्वरों का परिवर्तन ह्रस्वान्त स्वरों में हो रहा था।[6] सन्धाभाषा में यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। इसीलिए सन्धाभाषा के संज्ञा रूपों में ह्रस्व-स्वरान्त रूपों की प्रधानता मिलती है, जिनमें ह्रस्व अकारान्त रूप प्रमुख रहते हैं।[7]

संज्ञा में लिंग वचन तथा कारक के कारण रूपान्तर होता है। सन्धाभाषा के संज्ञा रूपों में इन दृष्टियों से जो रूपान्तर या परिवर्तन होते हैं, उनका वर्णन आगे किया जाता है।

---

१ दे० चटर्जी : दि ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट आव दि बंगाली लैंग्वेज, भाग १, पृ० ८६।

२ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।

३ दे० वही, पृ० ६, प० २।

४. दे० वही, पृ० ४३, प० १९।

५ दे० यह शोध प्रबन्ध (पीछे)।

६ दे० तगारे : हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑव अपभ्रंश, पूना, १९४८, पृ० १०५।

७ दे० वही।

लिंग

आ० भा० आ० में पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसकलिंग की स्थिति भी मिलती है। प्राकृत में सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण, केवल पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग की स्थिति उपलब्ध होती है।[1] सन्धाभाषा में नपुंसक लिंग नहीं मिलता। अतः सन्धाभाषा के बहुत से संज्ञा रूपों का लिंग निर्णय करना बड़ा कठिन हो जाता है। अन्य प्रदेशों के अपभ्रंशों की अपेक्षा पूर्वी अपभ्रंश में लिंग निर्णय की अतिशय कठिनाई की ओर टगारे ने संकेत किया है।[2] इससे सन्धाभाषा के संज्ञा रूपों में लिंग निर्णय की कठिनाई का अनुभव किया जा सकता है।

प्राणिवाचक संज्ञाओं का लिंग निर्णय उनके अर्थ के आधार पर किया जाता है। अतः, जिन वस्तुओं के जोड़े का ज्ञान हमें रहता है, उनके लिंग-निर्णय में कोई कठिनाई नहीं होती। वास्तविक कठिनाई अप्राणिवाचक संज्ञाओं के लिंग निर्णय के सम्बन्ध में होती है। उनका निर्णय रूप तथा व्यवहार इन दो आधारों पर होता है। नीचे इसी पद्धति पर सन्धाभाषा के संज्ञा रूपों के लिंगों का विवेचन किया जाता है।

रूप के आधार पर लिंग निर्णय का विवेचन

रूप के आधार पर संज्ञाओं के लिंग निर्णय का प्रयास होता है। सन्धा-भाषा में भी, रूप के आधार पर कुछ ऐसे सामान्य नियम बनाये जा सकते हैं, जिनसे उसके संज्ञा रूपों का लिंग निर्णय हो सके। परन्तु बहुत संज्ञाएँ ऐसी हैं, जिनके भिन्न भिन्न रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं। जैसे

अणह — अणहा

देव — देवा

फल — फलु

रस — रसु इत्यादि।

---

१ चटर्जी ओरिजिन एण्ड डवलेपमण्ट आव दि बंगाली लैंग्वेज, भाग १, भूमिका-खण्ड पृ० १८।

२ दे० पा० टि०, ८२।

अत एक ही शब्द के भिन्न भिन्न रूप मिलने के कारण रूप के आधार पर उसका लिंग निर्णय करना कठिन हो जाता है। हिन्दी में भी इस प्रवृत्ति के कारण कहीं कहीं एक ही शब्द के भिन्न भिन्न लिंग मिलते हैं।[1] जैसे

नगर और नगरिया।

लिंग निर्णय सम्बन्धी नियमों का वर्णन

उपर्युक्त कठिनाई के रहते हुए भी रूप के आधार पर सन्धाभाषा की ह्रस्वान्त तथा दीर्घान्त सज्ञाओं के लिंग निर्णय सम्बन्धी सामान्य नियम निश्चित किये जा सकते हैं।

ह्रस्वान्त सज्ञाओं का नियम

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि सन्धाभाषा के ह्रस्व अ तथा उकारान्त सज्ञा रूप पुंलिंग होते हैं तथा ह्रस्व इकारान्त रूप स्त्रीलिंग। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसे सज्ञा रूप भी मिलते हैं जिनमें उपर्युक्त नियम का पालन नहीं होता। नीचे इन रूपों का सक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

अकारान्त पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के अ-कारान्त सज्ञा रूप प्राय पुंलिंग होते हैं। जैसे

गराहक (ग्राहक)
गअण[2] (गगन)
चोर[3] (चोर)
नगर[4] (नगर)
नायक[5] (नायक)
पण्डिअ[6] (पण्डित) इत्यादि।

---

१ मिला बीम्स ए कम्पेरेटिव ग्रामर आव दि माडर्न आर्यन लैंग्वेजेज आव इण्डिया जिल्द २ लन्दन १८७ पृ० ४०।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३।
३ दे० वही च० ८।
४ दे० वही च० ३।
५ दे० वही च० १०।
६ दे० वही च० १५।
७ दे० बागची दोहाकोष पृ० ३० प० ६८।

अ कारान्त स्त्रीलिंग रूप

उपयुक्त नियम के अपवाद-स्वरूप कुछ अ-कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा रूप भी सन्धाभाषा में मिलते हैं। जैसे

खाट[1] (खाँया)

नणन्द[2] (ननद)

परन्तु ऐसे रूप बहुत कम मिलते हैं।

उ कारान्त पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के ह्रस्व उ कारान्त संज्ञा रूप प्रायः पुंलिंग होते हैं। जैसे

गुरु[3] (शिक्षक)

परमेसरु[4] (परमेश्वर)

दिवाअरु[5] (दिवाकर) इत्यादि।

उ कारान्त स्त्रीलिंग रूप

उपयुक्त नियम के अपवाद स्वरूप प्राणिवाचक सासु[6] शब्द में उ कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा रूप का उदाहरण मिलता है।

इ कारान्त स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के ह्रस्व इ कारान्त संज्ञा रूप प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे

घरिणि[7] (गृहिणी)

सहि[8] (सखि)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।
२ दे० वही च० ११।
३ दे० वही च० १।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २७ प० १८।
५ दे० वही पृ० २५, प० ४७।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४२ प० १३।
८ दे० वही, पृ० २४, प० ४३।

कमलिनी[1] (कमलिनी)

डोम्बि[2] (डोम्बी)

भअवइ[3] (भगवती) इत्यादि ।

इ कारान्त पुंलिंग रूप

उपर्युक्त नियम के अपवाद स्वरूप कुछ इ कारान्त पुंलिंग संज्ञा रूप भी सन्धाभाषा में मिलते हैं। जैसे

घरवइ[4] (गृहपति)

जोइ[5] (योगी)

भतारि[6] (पति) इत्यादि ।

इस श्रेणी के रूप प्रायः प्राणिवाचक हैं।

दीर्घान्त संज्ञाओं का नियम

स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के संज्ञा रूपों का अध्ययन करने पर तगारे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अपभ्रंश के दीर्घ आ ई तथा ऊ कारान्त संज्ञा-रूप सदा स्त्रीलिंग होते हैं।[7] यहाँ उल्लेखनीय है कि सन्धाभाषा में इस नियम का पालन नहीं हुआ है। सन्धाभाषा में दीर्घ ऊ कारान्त संज्ञा रूप नहीं मिलते, पर उपलब्ध दीर्घ आ तथा ई कारान्त संज्ञा रूप स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग दोनों में प्रायः समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जाता है।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७।
२. दे० वही, च० १०।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५ प० १७।
४. दे० वही, पृ० ३४, प० ८४।
५. दे० वही, पृ० ९, प० २५।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २०।
७. दे० तगारे हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑव अपभ्रंश, पूना, १९४८, पृ० १०६।

आ कारान्त पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के आ-कारान्त पुंलिंग रूप निम्नांकित हैं

पण्डिआ[1] (पण्डित)

भअवा[2] (भगवान्)

बम्हा[3] (ब्रह्मा)

राआ[4] (राजा)

सिआला[5] (शृगाल)

सुसुरा[6] (श्वसुर)

हरिणा[7] (हरिण) इत्यादि ।

पूर्वी हिन्दी की बोलियों में, अपनापन सूचित करने के लिए, शब्दों के अन्त में आ जोड़ कर बोलने की प्रवृत्ति प्रचलित है । अतः, स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग सभी शब्द वहाँ आ-कारान्त हो जाते हैं । जैसे, लड़किआ (लड़की) घड़िआ (घड़ी) इत्यादि । सन्धाभाषा के उपर्युक्त सुसुरा, सिआला तथा हरिणा इत्यादि रूपों में पूर्वी बोलियों की यह विशेषता स्पष्ट देखी जा सकती है ।

आ-कारान्त स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के आ-कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा-रूप निम्नांकित हैं :

गविआ[8] (गाय)

छाआ[9] (छाया)

१. दे० शास्त्री : दोहाकोश, पृ० ४०, प० २ ।
२. दे० वही, पृ० ५, प० १७ ।
३. दे० वही, पृ० ६, प० २० ।
४. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो, च० ३४ ।
५. दे० वही, च० ३२ ।
६. दे० वही, च० २ ।
७. दे० वही, च० ६ ।
८. दे० वही, च० ३३ ।
९. दे० वही, च० ४६ ।

वासणा[1] (वासना)
वीणा[2] (वीणा)
जमुणा[3] (यमुना) इत्यादि।

दीर्घ ई कारान्त पु लिंग रूप

सन्धाभाषा के दीर्घ ई-कारान्त पु लिंग रूप निम्नांकित है
योगी[4] (योगी)
सामी[5] (स्वामी) इत्यादि।

दीर्घ ई कारान्त स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के कुछ दीर्घ ई कारान्त स्त्रीलिंग रूप निम्नांकित है

इन्दी[6] (इन्द्रिय)
डाली[7] (डाल)
नअरी[8] (नगरी) इत्यादि।

व्यवहार के आधार पर लिंग निर्णय का विवेचन

व्यवहार से भी सज्ञाओ के लिंग प्राय निश्चित हो जाते हैं। सन्धाभाषा के बहुत से सज्ञा रूपो को व्यवहार के कारण स्त्रीलिंग या पु लिंग कहा जा सकता है। उनका विवेचन आगे किया जाता है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४१।
२ दे० वही, च १७।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० ७।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ११।
५. दे० वही च० ५।
६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २ प० १।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।
८. दे० वही, च ११।

पु लिंग रूप

सन्धाभाषा के निम्नांकित सज्ञा रूपो को व्यवहार के आधार पर पु लिग कहा जा सकता है

अमिअ[1] (अमृत)

दापण[2] (दर्पण)

गिरि[3] (पर्वत) इत्यादि ।

इनमे स प्रथम दो रूपो को अ-कारान्त होने के कारण भी पु लिग कहा जा सकता है ।

स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के निम्नांकित सज्ञा रूप व्यवहार के कारण स्त्रीलिग कहला सकते है

कुडिआ[4] (कुटी)

खाट[5] (खैया) इत्यादि ।

पु लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के सामान्य नियम

लिंग निर्णय की अतिशय कठिनाई के रहते हुए भी, सन्धाभाषा मे सज्ञाओ के पुलिंग से स्त्रीलिंग बनाने के कुछ सामान्य नियम निश्चित किए जा सकते है । ऊपर इसका उल्लेख किया जा चुका है कि सन्धाभाषा के इ कारान्त सज्ञा रूप प्राय स्त्रीलिग होते हैं । अत , सन्धाभाषा के अ तथा आ कारान्त पु लिग रूपा मे इ, ई तथा इनि प्रत्यय जोड कर उनके स्त्रीलिग रूप बनाए जाते है । उनका सक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जाता है ।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २७ प० ५६ ।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३२ ।
३ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४४ प० २५ ।
४ दे० वही, च० १० ।
५ दे० वही, च० २८ ।

अ कारान्त रूप

सन्धाभाषा के अ-कारान्त पु लिग सज्ञा-रूपो के अन्त मे ह्रस्व इ प्रत्यय जोडने से उनके स्त्रीलिग रूप बनते हैं। जैसे

वाल[1] (बालक) + इ वालि (बालिका)

सन्धाभाषा के अ कारान्त पु लिग सज्ञा रूपो के अन्त मे दीघ ई प्रत्यय जोडने से उनके स्त्रीलिग रूप बनते है। जैसे

डाल[2] + ई=डाली[4] (पेड की शाखा)

देव[5] + ई=देवी[6] (देवी)

सन्धाभाषा के अ कारान्त पु लिग सज्ञा रूपो के अन्त मे इनि प्रत्यय जोडने से उनके स्त्रीलिग रूप बनते हैं। जसे

कमल[7] + इनि = कमलिनि

आ-कारान्त रूप

सन्धाभाषा के आ कारान्त पु लिग सज्ञा रूपो के अन्त मे ह्रस्व इ प्रत्यय जोडने से उनके स्त्रीलिग रूप कही-कही उपलब्ध होते हैं। जसे

करिणा[9] + इ = करिणि[10] (हथिनी)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो च० १।
२ दे० वही, च० ६।
 दे वही, च० ४५।
४ दे० वही च० २८।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ६५।
६ दे० वही पृ० ४३, प० १८।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० २७।
८ दे० वही।
९ दे० वही, च० ९।
१० दे० वही।

सन्धाभाषा के आ-कारान्त पुलिंग संज्ञा-रूपो के अन्त मे दीर्घ ई प्रत्यय के संयोग से उनके स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं। जैसे

सिआला[1] + ई = सिआली[2] (शृगाल की मादा)

हरिणा[3] + ई = हरिणी[4] (हरिण की मादा)

आ० भा० आ० के बाद भाषा मे सरलीकरण की जो प्रवृत्ति दिखाई पडने लगती है, उसका स्वरूप सन्धाभाषा के लिंगो मे भी स्पष्ट लक्षित होता है। वस्तुत, प्राकृत मे आरम्भ हुई सरलीकरण की प्रक्रिया सन्धाभाषा मे और अधिक स्पष्ट हो जाती है। लिंगो का उपर्युक्त विवेचन इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है। इससे सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति पर भी समुचित प्रकाश पडता है।

वचन

आ० भा० आ० मे तीन वचन मिलते हैं। यद्यपि प्राकृत मे द्विवचन का अन्त हो जाता है[5], तथापि एकवचन तथा बहुवचन के अतिरिक्त द्विवचन सूचक एक शब्द सन्धाभाषा मे उपलब्ध होता है, जिसके भिन्न-भिन्न चार रूप मिलते हैं

वणि[6]
वेण्णि[7]
वण्ण[8] तथा
वबि[9]।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३।
२ दे० वही च० ५०।
३ दे० वही, च० ६।
४ दे० वही।
५ दे० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश, पूना, १९४८, पृ० १०६।
६ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४२, प० १३।
७ दे० वही, पृ० ४१, प० ११।
८ दे० वही, पृ० ४०, प० ५।
९ दे० वही, पृ० ३६ प० ७४।

इन रूपों के अतिरिक्त कुछ स्थलों मे दो संख्यावाचक 'दुइ' शब्द से भी द्विवचन का बोध होता है। जैसे :

दुइ घरे[1]

द्विवचन के थोड़े मे रूपों के अतिरिक्त सन्धाभाषा के शेष सभी संज्ञा-रूप एकवचन या बहुवचन मे ही रहते हैं।

एकवचन से बहुवचन बनाने के नियम

सन्धाभाषा मे एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए शब्दों की विभक्तियों मे कोई विकार नहीं लाया जाता। इसके लिए, स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग दोनों प्रकार के शब्दों मे, निश्चित या अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों का सहारा प्राय लिया गया है।

सन्धाभाषा मे एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए जिन निश्चित संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, वे निम्नांकित हैं

तिण्ण[2] (तीन)
तिनि[3] (तीन)
पच[4] (पांच)
दह[5] (दस)
द्वादश[6] (बारह) तथा
चउसठ[7] (चौंसठ)।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २३, प० ३६।
३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १८।
४. दे० वही, च १३।
५. दे० वही, च० ३५।
६ दे० वही, च० ३४।
७. दे० वही, च० ३।

निम्नांकित अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए सन्धाभाषा में हुआ है

नाना[1] (अनेक)

बहु[2] (अनेक)

सअल[3] (सकल) तथा

सव्व (सब)।

कारक

लिंग तथा वचन के अतिरिक्त सन्धाभाषा के कारकों में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। प्रा० भा० आ० में आठ कारक तथा उनकी भिन्न भिन्न विभक्तियां मिलती हैं। सन्धाभाषा के कारकों में विभक्तियों की यह विभिन्नता बहुत कम हो जाती है तथा एक ही विभक्ति भिन्न भिन्न कारकों में प्रयुक्त होने लगती है। जैसे कर्म और सम्प्रदान तथा करण और अपादान कारकों में परस्पर विभक्तियों का अन्तर नहीं मिलता। करण तथा अधिकरण कारकों की कई विभक्तियों में परस्पर बहुत समानता मिलती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा के कारक रूपों में विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का आरम्भ हो गया था।[5]

इस विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि सन्धाभाषा के बहुत से संज्ञा रूपों में विभक्तियां अलग से जुड़ी हुई मिलने लगती हैं। संश्लिष्ट रूप से भिन्न भाषा के विश्लिष्ट रूप का यह सबसे बड़ी विशेषता है, जो सन्धाभाषा में उपलब्ध होती है।[6] अतः सन्धाभाषा के कारक रूपों के दो भेद किए जा सकते हैं

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० २८।

२ दे० बागची दोहाकोश पृ० २७ प० ५६।

३ दे० वही पृ० १ प० ६।

४ दे० वही पृ० २० प० २३।

५ मिला० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश पूना १९४८ पृ० १०४।

६ हिन्दी में यह प्रवृत्ति और आगे बढ़ती है। फलतः हिन्दी की सभी विभक्तियां शब्दों से अलग से ही जुड़ी रहती हैं।

सश्लिष्ट रूप तथा

विश्लिष्ट रूप।

इनम प्रधानता सश्लिष्ट रूपो की है। पहले सश्लिष्ट रूपो का वणन नीचे किया जाता है।

सश्लिष्ट रूप

सन्धाभाषा म करता तथा सम्बोधन कारको के जो रूप उपलब्ध हैं उनमे विभक्तिया साथ सलग्न नहीं मिलती। अत सश्लिष्ट रूपो मे केवल शेष कारको के उदाहरण ही उपलब्ध होते है। विभक्तियो के साथ उन कारको का वणन नीचे किया जाता है।

कर्म तथा सम्प्रदान कारक

सन्धाभाषा म कम तथा सम्प्रदान कारको के रूपो म कोई अन्तर नही मिलता। इनके लिए तीन विभक्तियाँ मिलती है ए, एँ तथा ह। इनमे ए तथा उसक अनुनासिक रूप एँ विभक्तियो का प्रयोग प्रचुर मात्रा म हुआ है। जैसे

आनन्दे[1] (आनन्द को)

चित्ते[2] (चित्त को)

सुणे[3] (शून्य को)

दुखे[4] (दुख को)

सुखेँ[5] (सुख को) इ यादि।

ह विभक्ति का प्रयोग बहुत सीमित सख्या मे हुआ है। जैसे

भत्तारह[6] (पति को)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३०।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८५।

३ दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० २६।

४ दे० वही, च० ३४।

५ दे० वही।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।

करण तथा अपादान कारक

सन्धाभाषा के करण तथा अपादान कारकों के रूपों में भी कोई भेद नहीं मिलता। इनके लिए निम्नांकित विभक्तियाँ मिलती हैं

अ, ए एँ तथा एहि।

अ विभक्ति का प्रयोग बहुत सीमित संख्या में मिलता है। जैसे :

समाहिअ[1] (समाधि द्वारा)

वाकलअ[2] (वल्कल से)

एहि विभक्ति का प्रयोग भी बहुत कम मिलता है। जैसे :

घरिणिएहि[3] (गृहिणी के द्वारा)

हुआसणहि[4] (हुताशन से)

प्रथम उदाहरण कर्मवाच्य का रूप प्रस्तुत करता है।

ए तथा एँ विभक्तियाँ प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुई हैं। जैसे :

जाणें[5] (ज्ञान से)

दरिसणें[6] (दर्शन से)

धम्में[7] (धर्म से)

होमें[8] (होम से)

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १।

२. दे० वही, च० ३।

३. दे० बागची दोहाकोश, पृ ३४, प० ८४।

४ दे० वही, पृ० ११ प० १८।

५. दे० वही, पृ० २०, प० ३६।

६. दे० वही, पृ० १०, प० ७।

७. दे० वही, पृ० २०, प० २४।

८. दे० वही, पृ० ४५, प० २६।

उएस[1] (उपदेश से)

णेहें[2] (नह स)

वअण[3] (वचन स) इत्यादि।

सम्बन्ध कारक

सम्बन्ध कारक के लिए सन्धाभाषा में पाँच विभक्तियाँ मिलती है एर, अरी एरी, र तथा ह।

एर विभक्ति का प्रयोग प्रचुर मात्रा म मिलता है। जैसे

डोम्बीएर[4] (डोम्बी का)

मुषाएर[5] (चूहे का)

हाडर[6] (हड्डी का) इत्यादि।

अरि विभक्ति का प्रयोग बहुत कम मिलता है। जैसे

करुणरि[7] (करुणा का)

एरी विभक्ति भी बहुत कम मिलती है। जैसे

महामुदेरी[8] (महामुद्रा की)

र विभक्ति का प्रयोग निम्नांकित स्थलों मे मिलता है

हरिणार[9] (हरिणा का)

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० १८, प० ३।

२ दे० वह पृ० ४५ प० २६।

३ दे० वही पृ० ९ प० ५।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो च० ३८।

५ दे० वही, च० २१।

६ दे० वही, च० १०।

७ दे० वही च० ४८।

८ दे० वही, च० ३७।

९ दे० वही, च० ६।

हरिणीर[1] (हरिणी का)

वाडिर[2] (गृह का)

ह विभक्ति निम्नांकित स्थलों मे मिलती हैं

करिह[3] (हाथी का)

चित्तह[4] (चित्त का)

मन्तह[5] (मन्त्र का) इत्यादि।

अधिकरण कारक

सन्धाभाषा मे अधिकरण कारक के रूप प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। अधिकरण कारक की विभक्तियाँ निम्नांकित हैं :

इ, ए ऐ एहि, हि, हिँ, ह, तथा त।

सन्धाभाषा मे अधिकरण कारक के लिए इ विभक्ति का प्रयोग बहुत सीमित है। जैसे

दिवसइ[6] (दिन मे)

ए विभक्ति का प्रयोग प्रचुर मात्रा म मिलता है। जैसे

घरे[7] (घर मे)

जले[8] (जल मे)

रथे[9] (रथ पर) इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।
२ दे० वही, च० ५०।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ८।
४ दे० वही, पृ० २३, प० ३६।
५ दे० वही पृ० ६ प० ६।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ७।
७ दे० वही, च० ३।
८ दे० वही, च० ४३।
९ दे० वही च० १८।

अनुनासिक ऐं विभक्ति का प्रयोग भी बहुत मिलता है। जैसे :

गअणें[1] (गगन में)

भुअणें[2] (भुवन में)

मज्झें[3] (मध्य में)

हिऐं[4] (हृदय में) इत्यादि।

एहि विभक्ति का प्रयोग बहुत ही कम संख्या में हुआ है। जैसे :

पाणिएहिं[5] (पानी में)

हि विभक्ति का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। जैसे :

घरहिं[6] (घर में)

जम्महिं[7] (जन्म में)

पाणीहिं[8] (जल में)

हिअहिं[9] (हृदय में) इत्यादि।

अनुनासिक हिँ विभक्ति का प्रयोग भी बहुत मिलता है। जैसे :

देहहिँ[10] (देह में)

सुण्णहिँ[11] (शून्य में)

मरुथलिहिँ[12] (मरुस्थली में) इत्यादि।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३८।
२. दे० वही, च० ३४।
३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ११।
४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ४४।
५. दे० बागची दोहाकोश पृ ४६, प० ९२।
६. दे० वही, पृ० ३८, प० १०३।
७. दे० वही, पृ० ७, प० २८।
८. दे० वही, पृ० ६, प० २।
९. दे० वही, पृ० ३१, प० ७३।
१०. दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।
११. दे० वही, पृ० ३२, प० ७५।
१२. दे० वही, पृ० २७ प० ५६।

ह विभक्ति बहुत सीमित संख्या मे मिलती है। जैसे :

रअणिह[1] (रात मे)

त विभक्ति निम्नांकित स्थलो मे मिलती है :

टालत[2] (टीले पर)

पिठत[3] (पीठ पर)

माङगत[4] (मार्ग मे)

हाडीत[5] (हाँडी मे) इत्यादि।

सश्लिष्ट रूपो के कारको तथा उनकी विभक्तियों को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

कारक		विभक्तियाँ
कर्म तथा सम्प्रदान	—	ए, ऐ, ह।
करण तथा अपादान	—	अ, ए, एँ तथा एहि।
सम्बन्ध	—	एर, अरि, एरी, र तथा ह।
अधिकरण	—	इ, ए, एँ, एहि, हि हिँ, ह तथा त।

विश्लिष्ट रूप

सन्धाभाषा मे जिन शब्द-रूपो मे विभक्तियाँ अलग से जुडी हो, उस प्रकार के विश्लिष्ट रूपो को दो वर्गो मे रखा जा सकता है :

जिन रूपो मे विभक्तियाँ प्रारम्भ मे जुडी हो, तथा

जिन रूपो मे विभक्तियाँ अन्त मे जुडी हो।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।

२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।

३. दे० वही, च० १४।

४. दे० वही, च० ८।

५. दे० वही, च० ३३।

शब्दों के आदि में जुड़नेवाली विभक्तियाँ

सन्धाभाषा में शब्दों के आदि में जोड़ी जानेवाली विभक्तियाँ केवल सम्बोधन कारक में ही मिलती हैं। ये विभक्तियाँ ए-कारान्त तथा ओ-कारान्त हैं। ए-कारान्त विभक्तियाँ तीन हैं अरे, रे तथा ए। ओ-कारान्त विभक्तियाँ छह है : हालो, आलो, अलो, लो भो तथा गो। इनका विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

अरे

सन्धाभाषा में सम्बोधन कारक की अरे विभक्ति निम्नांकित पाँच स्थलों में मिलती हैं

अरे णिक्कोली[1]
अरे निअमन[2]
अरे पुत्तो[3]
अरे लोअ[4] तथा
अरे वढ़[5]।

इस विभक्ति में हिन्दी का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

रे

रे विभक्ति अरे विभक्ति का संक्षिप्त रूप है। निम्नांकित उदाहरणों में इसका रूप मिलता है

रे विअ[6]
रे जोइ[7]
रे ठाकुर[8] इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८ प० ५१।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८, प० ५१।
४ दे० वही, पृ० ११, प० १०।
५ दे० वही पृ० २८, प० ४८।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।
७. दे० वही च० ३७।
८. दे० वही, च० १२।

ए

सन्धाभाषा में सम्बोधन कारक के लिए ए विभक्ति का प्रयोग केवल एक स्थल पर मिलता है .

ए सइउ[१]

इसमे रे विभक्ति का सयोगी स्वर-मात्र ही शेष रह गया है ।

हालो

हालो विभक्ति का प्रयोग सन्धाभाषा में दो स्थानों में मिलता है ।

हालो डोम्बि[२] तथा
हालो डोम्बी[३] ।

शेष सभी विभक्तियाँ (आलो, अलो, लो, भो तथा गो) एक-एक स्थान पर मिलती है । ये स्थल क्रमश: निम्नाङ्कित हैं .

आलो डोम्बि[४]
अलो सहि[५]
लो डोम्बी[६]
भो विआती[७] तथा
गो माए[८] ।

भो विभक्ति आ० भा० आ० की भोः विभक्ति से उद्भूत है । गो विभक्ति मे मगही प्रभाव लक्षित होता है । 'गे मइआ' जैसे सम्बोधन कारक के प्रयोग मगही मे बहुत प्रचलित हैं ।[९]

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३५, प० ६० ।
२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १० ।
३. दे० वही, च० १८ ।
४. दे० वही, च० १० ।
५. दे० वही च० १७ ।
६. दे० वही, च० १० ।
७ दे० वही, च० २ ।
८. दे० वही, च० २० ।
९. लोकभाषा होने के कारण सन्धाभाषा इस प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका ।

शब्दों के अन्त मे जुडनेवाली विभक्तियाँ

शब्दो के अन्त में जोडी जानेवाली विभक्तियो मे कर्म तथा सम्प्रदान कारक का एक रूप सन्ध्याभाषा म मिलता है

करि कू[१] (हाथी को)

करण तथा अपादान कारक के दो रूप मिलते हैं

नरङ्ग ते[२] (दौड से)

दुख तें[३] (दु ख से)

अधिकरण कारक का एक रूप मिलता है

शूण में[४] (शून्य मे)

विभक्ति रहित रूप

विभक्ति सहित कारक रूपो के अतिरिक्त निर्विभक्तिक रूप भी सन्धाभाषा मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। हिन्दी म कर्त्ता कारक के लिए शून्य विभक्ति का प्रचलन है। कुछ प्रसगो मे कर्म तथा सम्बोधन कारको की विभक्तियो का भी लोप होता है। स धाभाषा के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि उसम सभी कारको के कारण शब्द रूपो मे कोई विकार उत्पन्न नही होता। प्रसगो के अर्थ के आधार पर उन्हे भिन्न भिन्न कारको मे रखा जाता है। सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का यह भी एक सुन्दर प्रमाण है। नीचे प्रत्येक कारक के निर्विभक्तिक रूपो का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

कर्त्ता कारक

सन्धाभाषा म कर्त्ता कारक के लिए सर्वत्र शून्य विभक्ति का ही प्रयोग मिलता है। अत उसके सभी रूप निर्विभक्तिक हैं। जैसे

अणह[५]

चन्द[६]

पण्डिअ[७] इत्यादि।

---

१ द० शास्त्री बौ० गा दो० च ८।

२ दे० वही, च० ६।

३ दे० वही च० ११

४ दे० वही च० १३।

५ दे० वही च० १६।

६ दे० वही च० १४।

७ दे० बागची दोहाकोश पृ० २०, प० ८८।

कर्म तथा सम्प्रदान कारक

कर्म तथा सम्प्रदान कारक के निर्विभक्तिक रूप निम्नांकित हैं

अनुभव[1]

उएस[2]

वापुरे[3] इत्यादि ।

कर्म तथा सम्प्रदान कारको के रूपो मे कोई भेद नही मिलता ।

करण तथा अपादान कारक

सन्धाभाषा म करण तथा अपादान कारको के रूपो मे कोई अन्तर नही मिलता । इनके निर्विभक्तिक रूप निम्नांकित हैं

नाहा[4]

पाव[5]

पडियसी[6] इत्यादि ।

सन्धाभाषा के करण तथा अपादान कारको म विभक्ति सहित रूपो की प्रधानता है । अत, उनम निर्विभक्तिक रूप बहुत कम मिलत है ।

सम्बन्ध कारक

सम्बन्ध कारक के भी निर्विभक्तिक रूप सन्धाभाषा मे बहुत कम मिलते हैं । जैस

खसम[7]

वोहिअ[8] इत्यादि ।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३७ ।

२ दे० बागची दोहाकोश पृ० २०, प० २ ।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८ ।

४. दे० वही, च० १५ ।

५. दे० वही, च० ४१ ।

६ दे० बागची दोहाकोश पृ० २८, प० ६२ ।

७ दे० वही, पृ० ३१, प० ७२ ।

८. दे० वही, पृ० ३१ प० ७० ।

अधिकरण कारक

सन्धाभाषा में अधिकरण कारक के निर्विभक्तिक रूप निम्नांकित हैं

अग[1]

कूव[2]

समसुह[3] इत्यादि ।

सम्बोधन कारक

सन्धाभाषा में सम्बोधन कारक के लिए भी निर्विभक्तिक रूप मिलते हैं। जैसे

डोम्बी[4]

वढ[5]

महि[6] इत्यादि।

सन्धाभाषा की कारक-रचना

सन्धाभाषा के कारकों की विभक्तियों के विवेचन के बाद उनकी कारक-रचना प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास आगे किया जाना है। यहाँ केवल उन्हीं रूपों का उल्लेख नीचे किया गया है जो सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं। *कल्पित या सम्भावित रूपों का उल्लेख नहीं किया गया है।*

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ८।
३ दे० वही, पृ० ३ प० ५।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २५।
६. दे० वही, पृ० २४, प० ४३।

अ-कारान्त शब्द

कारक	पुंलिंग एकवचन	पुंलिंग बहुवचन	स्त्रीलिंग एकवचन	स्त्रीलिंग बहुवचन
कर्त्ता	— जआणु[1]	— अलिअ[2]	×	×
कर्म, सम्प्रदान	— रअण[3], मुणे[4], मुनें[5], भत्तारह[6]	×	×	×
करण, अपादान	पाव[7], जाणें[8], पुराणें[9], हुआमणेहि[10], चाकनअ[11], तरङ्गत[12]	ब्रम्हणेहि[13] — नावें[14]	–	×

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १ ।

२. दे० वही पृ० ४०, प० ३ ।

३. व० वही, पृ० ४२, प० १६ ।

४. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २६ ।

५ दे० वही च० ३४ ।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८० ।

७. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४१ ।

८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २६ ।

९. दे० वही, पृ० ४०, प० २ ।

१० दे० वही, पृ० ११, प० १८ ।

११ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३ ।

१२. दे० वही च० २ ।

१३ दे० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के पास सुरक्षित सरह के दोहाकोश की फोटो-प्रतिलिपि तथा मिला० राहुल दोहाकोश, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९ ७ पृ० २ । यहाँ उल्लेखनीय है कि बागची ने 'वम्हणेहि' पाठ दिया है, जो शुद्ध नहीं मालूम होता ।

१४. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३९ ।

सम्बन्ध — वाहिअ[1] हाडेर[2] करुणारि[3] मरणह[4] — सिआलह[5] — × ×

अधिकरण — गअण[6] पाणिएहि[7] दिवसइ[8] गअण[9] भुअण[10] जलहि[11] देहहि[12] रअणिह[13] गअणत[14] सूण मे[15] — कणहि[16] सीससु[17]

---

१ द० दागची दोहाकाश पृ० १, प० ७ । २ दे० पा० टि०, २६२ । दे० पा० टि २५ । ४ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४३, प० १६ । ५ दे० वही पृ० १६ प० ३ । ६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४. । ७ दे बागची दोहाकोश पृ० ४ प० ३२ । ८ द० शास्त्री बौ० गा० दो च० २ । ६ दे० वही च० २१ । १ दे० वही च० २४ ।

११ दे० बागची दोहाकोश पृ० २१ प० २४ ।

१२ दे० वही पृ० ३० प ६८ ।

१३ दे वही पृ ११ प० १७ ।

१४. दे शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८ ।

१५ दे० वही च० १३ ।

१ दे बागची दोहाकोश पृ० १५ प० ५ तथा मिला० इण्डियन लिगुइस्टिक्स जिल्द ८ भाग, १, पृ० ६ । रायचौधरी ने इस करण कारक का रूप माना है, परन्तु इसे अधिकरण का रूप मानना ही उचित है ।

१७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १५, प० ४ ।

	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
सम्बोधन —	×	वढ[1] अरे वढ[2] रे वढ[3]	×	×

आ-कारान्त शब्द

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	— विसआ[4]	पण्डिआ[5]	गविआ[6]	×
कर्म + सम्प्रदान	— दरहा[7]	×	माआ[8]	×
करण + अपादान	— नाहा[9] सोने[10] अन्धें[11]	— ×	लीलें[12] इच्छें[13]	×

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २५।
२ दे० वही, पृ० २४, प० ४४।
३ दे० वही, पृ० २०, प० २३।
४. दे० वही, पृ० ४६, प० २३।
५ दे० वही, पृ० ४०, प० २।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३।
७ दे० वही, च० १७।
८ दे० वही, च० ५०।
९. दे० वही, च० १५।
१० दे० वही, च० ८।
११ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ८।
१२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।
१३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ७९।

सम्बन्ध	— हरिणार[1] महामुदेरि[2]	— ×	करुणरि[3]	— ×
अधिकरण	— ×	— ×	×	— ×
सम्बोधन	— वापा[4]	— ×	×	— ×

ह्रस्व इ-कारान्त शब्द

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कारक				
कर्ता	— ससि[5]	×	भन्ति[6]	×
कर्म + सम्प्रदान	— धरवइ[7]	×	खुन्नि[8]	×
करण + अपादान	— ×	×	घरिणिएहि[9]	×
सम्बन्ध	— ×	करिहु[10]	×	×
अधिकरण	— ×	×	भानि[11] रअणिह[12]	×
सम्बोधन	— ×	रे जोइ[13]	सहि[14]	×

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ६।
२ दे० वही, च० ३७।
३ दे० वही, च० ३४।
४ दे० वही, च० ३२।
५ दे० वही, च० १७।
६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १५।
७ दे० वही पृ० ३४, प० ८४।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ८।
९ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३४, प० ८४।
१० दे० वही, पृ० १६ प० ८।
११ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३७।
१२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।
१३ दे० पा० टि०, २१७।
१४ दे० पा० टि०, २४८।

दीर्घ ई-कारान्त शब्द

कारक	पुंलिंग एकवचन	पुंलिंग बहुवचन	स्त्रीलिंग एकवचन	स्त्रीलिंग बहुवचन
कर्त्ता	×	×	हरिणी[1]	×
कर्म + सम्प्रदान	पाणी[2]	कवडी[3]	मेहेली[4]	×
करण + अपादान	×	पडिवेसी[5]	टाङ्गी[6]	×
सम्बन्ध	×	×	हरिणीर[7]	×
अधिकरण	पाणीहिं[8] पाणिएहिं[9]	×	हाडीत[10]	×
सम्बोधन	×	×	डोम्बी[11] हालो डोम्बी[12] लो डोम्बी[13]	×

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६ ।
२ दे० वही ।
३. दे० वही, च० १४ ।
४ दे० वही, च० ५० ।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८, प० ६२ ।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५ ।
७ दे० पा० टि०, २०७ ।
८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २ ।
९ दे० वही, पृ० ४६, प० ३२ ।
१० दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० २३ ।
११ दे० वही, च० १८ ।
१२. दे० वही, च० १८ ।
१३ दे० बागची [illegible] ।

उ कारान्त शब्द

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कारक				
कर्ता	— डमरु[1]	×		×
कर्म / सम्प्रदान	— अगु[2]	×		×
करण / अपादान	×	×		×
सम्बन्ध	— ×	×		×
अधिकरण	— ×	×		×
सम्बोधन	— ×	×		×

ए कारान्त तथा ओ कारान्त शब्दों की कारक रचना के उदाहरण मध्यभाषा में नहीं मिलते।

सर्वनाम

मध्यभाषा के सर्वनाम हिन्दी सर्वनामों की भाँति, निम्नांकित छह वर्गों में रखे जा सकते हैं

पुरुषवाचक सर्वनाम

निजवाचक सर्वनाम

निश्चयवाचक सर्वनाम

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा

प्रश्नवाचक सर्वनाम।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १४।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१, प० ६।

पुरुषवाचक सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनामो के तीन भेद है : उत्तमपुरुष मध्यमपुरुष तथा अन्यपुरुष। इनके अतिरिक्त वचन तथा कारक के कारण भी सर्वनामो मे परिवर्त्तन होते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि हिन्दी सर्वनामो की भाति सन्धाभाषा के सर्वनाम म लिंग के कारण परिवर्त्तन नही होता। इन दृष्टियो से सन्धाभाषा के सर्वनामो के जो विभिन्न रूप उपलब्ध होते हैं, उनका विवेचन नीचे किया जाता है।

पुरुष तथा वचन की दृष्टि से

उत्तमपुरुष एकवचन

सन्धाभाषा मे उत्तमपुरुष बहुवचन सर्वनामो के रूप नही मिलते। अत, केवल एकवचन के रूपों का ही विवरण दिया जाता है। सन्धाभाषा मे उत्तम पुरुष एकवचन के रूप निम्नांकित हैं

अमहे[1] या अम्हे[2]
आमहे[3] या आम्हे[4]
माए[5] (मैंने)
हउ[6]
हॅउ[7]
हउँ[8]
हांउ[9]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४। हेमचन्द्र ने इसे बहुवचन का रूप कहा है।
२ दे० वही च० २२। हेमचन्द्र ने इसे बहुवचन का रूप कहा है।
३ दे० वही, च० १।
४ दे० वही, च० १२।
५ दे० वही, च० १०।
६. दे० बागची दोहाकोश पृ० ८, प० ३४।
७ दे० वही, पृ० ५, प० १६।
८ दे० वही, पृ० ३०, प० ६८।
९ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १०, १८।

मध्यमपुरुष एकवचन

सन्धाभाषा के मध्यमपुरुष वाले सर्वनामों में भी बहुवचन के स्पष्ट रूप नहीं मिलते। मध्यमपुरुष एकवचन के रूप निम्नांकित हैं

तू[1]
तुह्[2]
तइ[3]
तँइ[4]

अन्यपुरुष एकवचन

उत्तम तथा मध्यमपुरुष वाले सर्वनामों के अतिरिक्त शेष जितने सर्वनाम हैं, वे सभी अन्य पुरुष की श्रेणी में आते हैं। 'वह' शब्द अन्यपुरुष का उदाहरण माना जाता है।

सन्धाभाषा में अन्यपुरुष एकवचन सर्वनाम 'वह' के समानार्थी उदाहरण उपलब्ध हैं। जैसे

वा[5] (वह)
उ[6] (वह)
ता[7] (वह) इत्यादि।

अन्यपुरुष बहुवचन

अन्यपुरुष बहुवचन 'व' सर्वनाम के रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं। जैसे

त[8] (व)

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १०, १८।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२, प० ७५।
३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६।
४. दे० वही, च० १८।
५. दे० वही, च० ४०।
६. दे० वही, च० ४६।
७. दे० वही, च० ७।
८. दे० वही।

निम्नांकित तालिका द्वारा सन्धाभाषा के पुरुषवाचक सर्वनामों का रूप स्पष्ट किया जा सकता है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अम्हे, आम्हे, मोए, हउ, हुँउ, हउँ, हाँउ	इसके रूप नही मिलते।
मध्यमपुरुष	तु, तुहु, तइ, तँइ	इसके रूप नही मिलते।
अन्यपुरुष	वा, उ, ता इत्यादि	ते इत्यादि

बाबूराम सक्सेना ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि जनता के मस्तिष्क मे सर्वोपरि रहने के कारण, सर्वनामों की आदि ध्वनियों मे परिवर्तन बहुत कम होता है।[१] सन्धाभाषा के पुरुषवाचक सर्वनामों की आदि ध्वनियाँ भी आ० भा० आ० के पुरुषवाचक सर्वनामों की आदि ध्वनियों के बहुत निकट हैं।

कारक की दृष्टि से

उत्तम पुरुष

सन्धाभाषा के उत्तमपुरुष सर्वनामों मे केवल कर्त्ता, करण तथा सम्बन्ध कारकों के एकवचन वाले रूप मिलते हैं। उत्तमपुरुष सर्वनाम के उपर्युक्त सभी रूप कर्त्ता कारक के है। सम्बन्ध कारक के रूप निम्नांकित है

मोर[१क]
मोरि[२]
मेरि[३]
मइ[४]
मो[५]

---

१. दे० सक्सेना, बाबूराम इवोल्यूशन ऑव अवधी, पृ० १५७।
१क. दे० पा० टि०, १७, च० २०।
२ दे० वही, च० ३६।
३ दे० वही, च० ५०।
४ दे० वही, च० १८ तथा बागची : दोहाकोश, पृ० २७, प० ५८।
५ दे० श्री बौ० गा० दो०, च० ७।

सम्बन्ध कारक के अन्तिम दोनो रूप कुछ स्थलो पर उत्तमपुरुष एकवचन सर्वनाम की भाँति प्रयुक्त होने के कारण कर्त्ता कारक के भी रूप कहला सकते हैं।[1] उपर्युक्त 'मइ' सर्वनाम को करण कारक का रूप भी कह सकते हैं। इसका प्रयोग कर्मवाच्य के प्रसंग मे ही हुआ है।[2]

मध्यमपुरुष

सन्तभाषा के मध्यमपुरुष सर्वनामो मे कर्त्ता, कर्म तथा सम्बन्ध कारको के एकवचन के रूप ही मिलते हैं। मध्यमपुरुष सर्वनाम के उपर्युक्त सभी रूप कर्त्ता कारक के रूप हैं। कर्मकारक के तीन रूप मिलते हैं। ये सभी ए कारान्त हैं

तुम्हे या तुम्हे[3]
तोरे[4] (तुमको)
तोहोरे[5] (तुमको)

कर्मकारक की भाँति प्रयुक्त होने पर भी अन्तिम दोनो रूप सम्बन्ध कारक के रूपो के निकट प्रतीत होते हैं।

सम्बन्ध कारक के रूप निम्नांकित हैं

त[6] (तुम्हारा या तुम्हारी)
तोहोर[7] (तुम्हारा या तुम्हारी)
तोरा[8] (तुम्हारा या तुम्हारी)
तोहोरि[9] (तुम्हारा या तुम्हारी)

---

१. दे० शास्त्री : चौ० गा० दो०, च० १६ तथा ३६।
२ मिला० इण्डियन लिंगुइस्टिक्स, ग्रियर्सन स्मारक-संख्या, पृ० १६३ मे भवानीप्रसाद रायचौधरी का लेख।
३. दे० शास्त्री चौ० गा० दो०, च० ५ और २३।
४. दे० वही, च० १८।
५. दे० वही।
६. दे० वही।
७ दे० वही, च० १०।
८. दे० वही, च० ४१।
९. दे० वही, च० २८।

तोहोरि[1] (तुम्हारा या तुम्हारी)
तोए[2] (तुम्हारे)
तो[3] (तुम्हारा)

अन्यपुरुष

कारक की दृष्टि से अन्यपुरुष सर्वनामों का विवरण सर्वनामों के अन्य भेदों के विवेचन के प्रसंग में आगे किया गया है।

पुरुषवाचक सर्वनामों की कारक-रचना निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट की जा सकती है :

उत्तमपुरुष

कारक	—	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	—	अम्हे, आम्हे, मोए, हउ, हँउ, हउ[3क], हाँउ	इसके रूप नही मिलते।
कर्म	—	इसके रूप नही मिलते	
करण	—	मइ	
सम्प्रदान	—	मइ	
आपादान	—	मइ	
सम्बन्ध	—	मोर, मोरि, मेरि, मइ, मो	
अधिकरण	—	इसके रूप नही मिलते	
सम्बोधन	—	" "	

मध्यमपुरुष

कारक	—	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	—	तु, तुहु, तइ, तँइ	रूप नही मिलते।
कर्म	—	तुम्हे, तोरें, तोहोरे	
करण	—	इसके रूप नही मिलते	

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १०।
२ दे० वही।
३. दे० वही, च० ४।
३क. मिला०, इण्डियन लिंगुइस्टिक्स, ग्रियर्सन-स्मारक-संख्या, पृ० १६३-६४।

		एकवचन	बहुवचन
सम्प्रदान	—	इसके रूप नहीं मिलते	
अपादान	—	„ „	
सम्बन्ध	—	त टोहोर, नोरा तोहरि तोहोरि, तोए तो	रूप नहीं मिलते ।
अधिकरण	—	इसके रूप नहीं मिलते	
सम्बोधन	—	„ „	

निजवाचक सर्वनाम

सन्धाभाषा के निजवाचक सर्वनामों में 'आप' तथा 'निज' दोनों के समानार्थी शब्द उपलब्ध होते हैं। जैसे

निअ[1]

अपणे[2]

अप्पणा[3] इत्यादि।

वचन के कारण निजवाचक सर्वनामों में अन्तर नहीं होता।

अदधा ण के लिए भी 'अपण' शब्द का प्रयोग सन्धाभाषा में हुआ है।[4]

कारक की दृष्टि से

सन्धाभाषा के निजवाचक सर्वनामों में कर्ता, कर्म तथा सम्बन्ध कारकों के रूप मिलते हैं। कुछ रूप ऐसे हैं जो भिन्न प्रसंगों में भिन्न भिन्न दो कारकों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

कर्त्ता कारक के रूप निम्नांकित हैं

अपण[5]

अ पणा

१ दे० शास्त्री बौ० गा दो च० ४।
२ दे० वही, च० ७।
३ दे० वही, च० ३६।
४ दे० वही च० २२।
५ दे० पा० टि० ३६।
६ दे० पा० टि०, ३७

'अप्पणा' रूप सम्बन्ध कारक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।

निजवाचक सर्वनामों में कर्मकारक के तीन रूप मिलते हैं :

अपणा[1] (अपने को)
अप्पा[2] (अपने को)
अप्पणु[3] (अपने को)

ये सभी रूप अन्य स्थलों पर सम्बन्ध कारक के रूपों की भाँति भी प्रयोग में आए हैं जिनका विवेचन नीचे किया जाता है। इन रूपों को सम्प्रदान कारक का रूप भी कहा जा सकता है।

सम्बन्ध कारक के रूप निम्नांकित हैं :

अप्पणा[4]
अपणा[5]
अप्पा[6]
अप्पणु[7]
अपा[8] (अपना)
अप्पाण[9] (अपना)
निअ } [10] (अपना, अपनी)
णिअ }
सअ[11] (अपना अपनी)

अन्तिम तीन रूप विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते हैं।[11क]

१. दे० पा० टि०, ३८।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८, प० ६०।
३. दे० वही, पृ० २९, प० ६५।
४ दे० पा० टि०, ३७।
५. दे० वही।
६. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ३८, प० १०५।
७. दे० वही, पृ० ३३, प० ८०।
८. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो०, च० ३९।
९. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ५, प० १३।
१० दे० पा० टि०, ३५।
११ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १७।
११क मित्रा, इण्डियन लिंगुईस्टिक्स ग्रियर्सन स्मारक-सङ्ख्या, पृ० १२७।

निजवाचक सर्वनाम की कारक रचना नीचे दी जाती है

कारक		एकवचन
कर्त्ता	—	अप्पणे, अप्पणा
कर्म, सम्प्रदान	—	अपणा, अप्पा, अप्पणु
करण	—	इसके रूप नहीं मिलते
अपादान	—	,, ,,
सम्बन्ध	—	अप्पणा, अपणा, अप्पा, अप्पणु, अपा, अप्पाण, निअ तथा णिअ
अधिकरण	—	इसके रूप नहीं होते
सम्बोधन	—	,, ,,

निश्चयवाचक सर्वनाम

सन्धाभाषा के निश्चयवाचक सर्वनामों में निकटवर्ती बहुवचन रूप 'ये' के समानार्थी शब्द नहीं मिलते। एकवचन 'यह' के निम्नांकित रूप मिलते हैं

अइस[1] (इस)
आइस[2] (इस)
इ[3] (यह)
इह[4] (इस)
ए[5] (यह)
एउ[6] (इस)
एहु[7] (यह)

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २४।
२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २९।
३ दे० पा० टि०, ४८।
४. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० १०।
५. दे० वही, पृ० ११, प० १४।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १।
७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ७, प० २६।

दूरवर्ती एकवचन 'वह' के समानार्थी निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं

ओ[1] (वह)
बा (वह)
स (वह)
स (वह)
सो[4] (वह)
ता[5] (वह)
तहि[6] (वह) इत्यादि।

दूरवर्ती बहुवचन 'वे' के समानार्थी निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं। जैसे

ते (वे)
ते (वे)
तण (वे) इत्यादि।

कारक की दृष्टि से

निश्चयवाचक सर्वनामों में सम्बोधन कारक के रूप नहीं मिलते। शेष सभी कारकों के उदाहरण सन्धाभाषा के निश्चयवाचक सर्वनामों में मिलते हैं।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ४।
२ दे० वही च० ४०।
३ दे० वही च० ३७।
४ दे० वही च० ।
५ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३ प० २८।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ७।
७ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३७ प० १००।
८ दे० वही पृ० ४३ प० २१।
९ दे० वही प० ३०, प० ६८।
१० दे० वही पृ० १३, प० ११।

इनकी कारक-रचना नीचे दी जाती है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लखनीय है कि निश्चयवाचक सवनामा क उपर्युक्त सभी रूप कर्ता कारक के हैं।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(उपर्युक्त उदाहरण देखें)	(उपर्युक्त उदाहरण देखें)
कर्म सम्प्रदान	तस्म,[1] तासु[2], ताहि[3]	रूप नहीं मिलते
करण, अपादान	वा[4]	,, ,,
सम्बन्ध	तसु[5], ताहेर[6]	,, ,,
अधिकरण	एत[7], एत्थ[8], एथु[9]	,, ,,

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

सन्धाभाषा मे अनिश्चयवाचक सवनामा के तीन रूप मिलते है

को[10] (कोई)
कोइ[11] (कोई)
केहो[12] (कोई)

ये तीनो रूप एकवचन के हैं। इनकी द्विरुक्ति से ही बहुवचन का बोध होता है। जैसे

कहो-कहो[13]

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १३ प० ११।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४३।
दे० बागची दोहाकोश पृ० ३ प० ८६।
४ दे० पा० टि०, ७०।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३ प० १०८।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २६।
७ दे० बागची दोहाकोश पृ० २८, प० ६१।
८ दे० वही, पृ० ३७ प० १००।
९ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १६।
१० दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० ६ ।
११ दे० वही, पृ० १६, प० ११।
१२ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १८।
१३ दे० वही।

कारक की दृष्टि से

सन्धाभाषा के अनिश्चयवाचक सवनामो मे केवल कर्ता कारक के रूप मिलते है, अन्य किसी कारक के नहो। इनका विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

सन्धाभाषा मे सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' के निम्नांकित भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं :

जं[1] (जो)
जा[2] (जो)
जे[3] (जो)
जें[4] (जो)
जेण[5] (जो)
जा[6] (जा)
जहिं[7] (जिस)

ये सभी रूप एकवचन के हैं। कुछ रूपो का द्विरुक्ति से उनके बहुवचन का बोध होता है। जैसे :

जे-जे[8]

कारक की दृष्टि से

सन्धाभाषा के सम्बन्धवाचक सवनामो मे कर्ता, कर्म, सम्प्रदान, सम्बन्ध तथा अधिकरण कारको के रूप मिलते हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम के उपर्युक्त

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २५।
२ दे० वही, च० २०।
३ बागची : दोहाकोश, पृ० ४२, प० २१।
४ दे० वही, पृ० १७, प० १३।
५ दे० वही, पृ० ८३, प० १९।
६ दे० वही, पृ० ५, प० १८।
७. दे० वही, पृ० ३४, प० ८४।
८. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ७।

सभी उदाहरण कर्त्ता कारक के रूप हैं। कर्म तथा सम्प्रदान का एक उदाहरण उपलब्ध होता है

जासु[1]

यह रूप सम्बन्ध कारक की भाँति भी प्रयुक्त हुआ है।

सम्बन्धवाचक सर्वनामों में सम्बन्ध कारक के रूप निम्नांकित हैं

जहि[2]

जाहेर[3]

जासु[4]

सन्धाभाषा के सम्बन्धवाचक सर्वनामों में अधिकरण कारक का यह उदाहरण मिलता है :

जसु[5] (जिसमें)

सन्धाभाषा के सम्बन्धवाचक सर्वनामों की कारक-रचना नीचे दी जाती है

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	ज, जा, जे, जो जहि	ज-ज
कर्म, सम्प्रदान	जासु	रूप उपलब्ध नहीं होते।
सम्बन्ध	जहि जाहर, जासु	,, ,,
अधिकरण	जसु	,

करण तथा अपादान कारकों के रूप नहीं मिलते।

---

१ दे० शास्त्री बौ गा० दो०, च० ३०।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३९ प० १०६

३ दे० पा० दि०, ७८।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ०८, प० ८०।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४०।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

सन्धाभाषा के प्रश्नवाचक सर्वनामों में क्या के समानार्थी रूप निम्नांकित हैं

कि[1] (क्या)
किम[2] (क्या क्यों)
किन्तो[3] (क्या)
काहि[4] (क्या)
काँहि[5] (क्या)

कौन के समानार्थी रूप निम्नांकित हैं

को[6] (कौन)
के[7] (कौन)

प्रश्नवाचक किस शब्द के समानार्थी सर्वनाम रूप, सन्धाभाषा में निम्नांकित हैं

काहरि
काहरि
कासु[1]

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० १६ प० २०।
२ दे० पा० टि० ८२।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० २४।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ८६ प० ३०।
५ दे० पा० टि० ६१।
६ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३०, प० ६७।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ८।
८ दे० वही च० १०।
९ दे० वही, च० ३०।
१० दे० बागची दोहाकोश पृ० १३, प० ९।

प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क्या' की कारक-रचना नही होती। यह शब्द इसी रूप मे केवल एकवचन (विभक्ति रहित) कर्त्ता तथा कर्म कारको में प्रयुक्त होता है।[1] 'कौन' तथा किस अर्थवाले उदाहरणो की कारक रचना के रूप भी सन्धाभाषा मे नहीं मिलते।

आदरसूचक सर्वनाम का एक भी उदाहरण सन्धाभाषा मे उपलब्ध नही होता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा के सर्वनामो मे विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का प्रारम्भ हो गया था। एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूप इस प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। कारक रूपो मे भी विविधता मिलती है। एक ही शब्द रूप भिन्न-भिन्न कारको म प्रयुक्त होता है। इसस स्पष्ट है कि हिन्दी मे मिलनेवाली विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का मूल सन्धाभाषा मे ही है।

सन्धाभाषा के 'उ', वा' तथा 'जो' इत्यादि कई सार्वनामिक रूपो मे हिन्दी सर्वनामो का रूप झलकने लगता है।

प्राकृत के सर्वनामो म लिंग भेद मिलता है।[2] सन्धाभाषा के सर्वनामो मे, हिन्दी-सर्वनामो की भाति, लिंग के कारण कोई परिवर्त्तन नही होता। इसस भी स्पष्ट है कि सन्धाभाषा हिन्दी का आदि रूप प्रस्तुत करती है और अन्तत उसी से हिन्दी का विकास हुआ है।

सन्धाभाषा के विशेषण

सन्धाभाषा के विशेषण आज की हिन्दी के समान, मुख्यत तीन वर्गों म विभक्त किए जा सकते हैं—पहला सार्वनामिक विशेषण, दूसरा गुणवाचक विशेषण और तीसरा सख्यावाचक विशेषण।[3] पुरुषवाचक तथा निजवाचक सर्वनामो को छोड कर शेष सर्वनाम विशेषण के रूप मे व्यवहृत होते हैं। उन्ह

१ दे० गुरु का० प्र० हिन्दी व्याकरण, काशी-नागरी प्रचारिणी सभा स० २००६ वि०, पृ० १०६।

२ दे० केलॉग : ए ग्रामर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज, तृतीय सस्करण, लन्दन, १९३८, पृ० १६८।

३ दे० का० प्र० गुरु हिन्दी-व्याकरण, सशोधित संस्करण, स० २००६ वि०, पृ० १२७।

ही सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। इनका विवेचन यथास्थान सर्वनाम के खण्ड में उपलब्ध है।[1] यहाँ शेष दो वर्गों में केवल गुणवाचक विशेषण का विवेचन किया जाता है। संख्यावाचक विशेषणों का विवेचन अगले प्रकरण में किया गया है।

गुणवाचक विशेषण

गुणवाचक विशेषण के उदाहरण सन्धाभाषा में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। बनावट या आकृति की दृष्टि से इन्हें विकारी तथा अविकारी इन दो वर्गों में रखा जा सकता है।

अविकारी रूप

अविकारी रूपों की यह सहज प्रवृत्ति है कि किसी भी अवस्था में उनके रूप नहीं बदलते। विशेष्य चाहे स्त्रीलिंग हो या पुलिंग, एकवचन हो या बहुवचन, उनके रूप पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। सन्धाभाषा के अविकारी विशेषण वाले रूप भी स्त्रीलिंग पुंलिंग तथा एकवचन बहुवचन सभी अवस्थाओं में एक ही रूप में रहते हैं। वे रूप निम्नांकित हैं

कुलिण[2] (कुलीन)
खर[3] (सं० प्रखर का रूप)
खान्टि[4] (उत्तम)
गम्भीर[5]
गहण[6]
णउ णउ[7] (स० नव-नव का रूप)

---

१ दे० यही थीसिस (पीछे)।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १८।
३ दे० वही, च० १६, ३८, और ४७।
४ दे० वही, च० ३८।
५. दे० वही, च० ५।
६. दे० वही, च० ५ तथा बागची : दोहाकोश, पृ० १६, प० २१।
७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० ६२।

दृढ[1]
दिढ[2] (स० दृढ का रूप)
भयकर[3]
भाल[4] (अच्छा)
महा[5]
वड[6] (मन्दिर)
विआपक[7] (व्यापक)
विचित्त[8]
सुभासुभ[9] (शुभाशुभ) इत्यादि ।

इन रूपो के सम्बन्ध मे यह द्रष्टव्य है कि दृढ तथा दिढ एक ही शब्द के दो रूप हैं। पहला तत्सम रूप है और दूसरा तत्कालीन लोकभाषा का रूप। गम्भीर तथा भयकर तत्सम शब्दो के साथ कुलिश पाउ-णउ, विचित्त आदि लोकभाषा के रूप भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं।

'खान्ति' तथा 'भाल' ये दोनो रूप उस वगप्रदेश के प्रभाव के परिचायक है, जहाँ रह कर कई सिद्धो ने अपना सहज-मत प्रचारित किया है। इससे सन्धाभाषा के स्वरूप पर काफी प्रकाश पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता

---

१. दे० शास्त्री . बौ० गा० ओ दो०, च० ६ ।
२. दे० वही, च० ३ तथा बागची : दोहाकोश, पृ ४४, प० २२ ।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, द्वितीय मुद्रण,च० १६ ।
४ दे० वही, च० १२ ।
५. दे० वही, च० ४३ ।
६ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ११, प० १६ ।
७ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० ६ ।
८ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२ ।
९ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० ४५ ।

है कि जहाँ वह लोकभाषा एक प्रदेश-विशेष में रची गई, वहाँ उसकी सहज प्रवृत्ति व्यापकता की ओर सदा उन्मुख रही। इसी से उसमें संस्कृत, बँगला, उड़िया तथा बिहारी बोलियों के पुट मिलते हैं, जिनको लेकर सन्धाभाषा के सम्बन्ध में काफी खींचातानी होती रही है।

विकारी रूपों का विवेचन

पुलिंग एकवचन रूप

विकारी विशेषण विशेष्य के लिंग तथा वचन के अनुसार अपना रूप धारण करते हैं। सन्धाभाषा में गुणवाचक विकारी विशेषणों के जो उदाहरण उपलब्ध हैं, उनमें पुलिंग एकवचन वाले रूपों की संख्या सात है। ये रूप अपने विशेष्य के अनुसार सदा पुलिंग तथा एकवचन में रहते हैं। ये रूप निम्नांकित हैं :

कन्धारा[1] (कनकधारा वाला)
गुणाअर[2] (गुणाकर)
गुहिर[3] (गहरा)
चचल[4]
चीअण[5] (चिकना)
पागल[6] तथा
वँग[7] (अंगविहीन)

---

१ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० १०।
२ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ११, प० १८।
३ दे० वही, पृ० १९, प० २१।
४. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० १ और २१।
५. दे० वही, च० ३।
६. दे० वही, च० २८।
७. दे० वही, च० ३३।

पु लिंग उभयवचन वाले रूप

सन्धाभाषा के विशेषणों में विशुद्ध पु लिंग बहुवचन के रूपों का निर्णय करना कठिन है, क्योंकि उनसे ऐसे रूप मिलते हैं, जो विशेष्य के लिंग के अनुसार पु लिंग हैं, पर उनसे एकवचन तथा बहुवचन दोनों की अभिव्यक्ति समान रूप से होती है। ये रूप निम्नांकित हैं :

अक्खट[1] (ओखा)
अणिमिस[2] (स० अनिमिष का रूप)
अणुअर[3] (स० के अनुत्तर का रूप)
अविकल[4]
असमल[5] (निर्मल)
उजू[6] (सीधा)
उच्छ[7] (उच्छिष्ट)
उचा उँचा[8]
कलअल[9]
णिचल[10]

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२ प० ७२।
२ दे० वही, पृ० ३, प० ६६।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ४४।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६ प० २२।
५ दे० वही पृ० २०, प० ६३।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १५।
७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ८।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० २८।
९. दे० वही, च० ४४।
१० दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४२, प० १३।

णिम्मल[1] तथा

वहल[2] (विस्तृत) इत्यादि ।

स्त्रीलिंग एकवचन का रूप

गुणवाचक विशेषणों मे स्त्रीलिंग एकवचन का केवल एक रूप उपलब्ध है। जैसे

एकेली[3]

स्त्रीलिंग उभयवचन के रूप

विशेषणों के दो रूप ऐसे मिलते हैं, जो लिंग के अनुसार स्त्रीलिंग रूप पर उनसे दोनो वचनो की अभिव्यजना समान रूप मे होती है। वे हैं

वापुडी[4] तथा अ'अत्ता[5]

अत, स्त्रीलिंग बहुवचन के निश्चित रूप नही मिलते ।

संज्ञा की भाँति व्यवहृत विशेषण

सन्धाभाषा मे गुणवाचक विशेषणों के ऐसे रूप भी उपलब्ध होते जिनका प्रयोग संज्ञा की भाँति हुआ है। जैसे

वढ[6]

यहाँ सम्बोधन कारक के रूप मे 'वढ' का प्रयोग संज्ञा की भाँति हुआ है

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ५, प० १३ ।
२. दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० २६ ।
३. दे० शास्त्री . बौ० गा० ओ दो०, च० २८ ।
४. दे० वही च० १० ।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३७, प० ६६ ।
६. दे० वही, पृ० २१, प० ३२ ।

गुणवाचक विशेषणों के प्रत्यय

ध्वनि विचार के प्रकरण म सन्ध्याभाषा की ह्रस्वान्त प्रवृत्ति पर विचार किया गया है।[1] गुणवाचक विशेषणो मे भी सन्ध्याभाषा की यह प्रवृत्ति लक्षित हाती है। इनके जितने रूप सन्ध्याभाषा मे उपलब्ध हैं, उनमे लगभग तीन-चौथाई रूप अकारान्त ही हैं। शेष रूपो मे आ कारान्त तथा ई-कारान्त रूपो की सख्या अपेक्षाकृत कुछ अधिक है। इ, उ तथा ए कारान्त रूपो की सख्या बहुत कम है।

अकारान्त रूप

सन्ध्याभाषा मे अ कारान्त गुणवाचक विशेषणो की सख्या बहुत अधिक है। उनमे से कुछ रूप नीचे दिए जाते हैं

अक्कट[2]

अदअ[3]

अद्दअ[4]

अममल[5]

उत्तु ग[6]

कलअन[7]

कुलिण[8]

खर[9]

---

१ दे० यही पीछे (पीछे)।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२, प० ७६।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४९।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४ प० १२ और पृ० ३८ प० १०७।

५ दे० वही, पृ० २०, प० २३।

६ दे० वही पृ० ४४, प० २१।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ४४।

८ दे० वही, च० १८।

९ दे० वही, च० १६, ३ तथा ४७।

गम्भीर[1]

गहण[2]

गुहिर[3]

चचल[4]

चीअण[5]

णिचल[6]

णिम्मल[7]

दुटठ[8]

दुठ[9]

पागल[10]

भयकर[11]

भाल[12]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ५।

२ दे० वही तथा बागची दोहाकोश पृ० १९ प० २१।

३ दे० बागची दोहाकोश पृ० १८ प० २१।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० १ और २१।

५ दे० वही च० ३।

६ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४२, प० १३।

७ दे० वही पृ० ५ प० १३।

८ दे० बागची दोहाकोश पृ० १ प० ७३।

९ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० ९।

१० दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० २८।

११ दे० वही च० १६।

१२ दे० वही च० १२।

वर[1]

विचित्त[2]

विरल[3]

विषम[4] इत्यादि ।

आ कारान्त रूप

प्रत्यय की दृष्टि से दूसरा स्थान आ कारान्त विशेषणों का है। इनमें से कुछ निम्नांकित हैं

आजत्ता[5]

उँचा उँचा[6]

महा[7] इत्यादि ।

ई कारान्त रूप

तीसरा स्थान ई-कारान्त विशेषणों का है। इनके केवल चार रूप उपलब्ध हैं जो निम्नांकित हैं

एकेली[8]

वली[9]

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२ तथा पृ० ४४, प० २५ और शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ३६ तथा ४५ ।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ५२ ।

३ दे० वही, पृ० ४ , प० ३० ।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ५० ।

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६६ ।

६. दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० २८ ।

७. दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ४३ ।

८ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० २८ ।

९. दे० वही, च० ५० ।

चापुडी[1] और

विषमो[2]

उ-कारान्त तथा ए कारान्त रूप

उ-कारान्त तथा ए-कारान्त गुणवाचक विशेषणो के क्रमश. दो-दो रूप सन्धाभाषा मे उपलब्ध हैं, जो नीचे अंकित हैं

णउ णउ[3]

बहु[4]

उच्छें[5] और

णिउणें[6]।

ऊ-कारान्त तथा इ-कारान्त रूप

दोघ ऊ कारान्त तथा ह्रस्व इ-कारान्त विशेषणो के केवल एक-एक रूप मिलते हैं

उजू[7] और

खान्टि[8]।

सन्धाभाषा के गुणवाचक विशेषणो के प्रसग मे एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। वह यह कि संस्कृत तथा अँगरेजी मे तुलनात्मक विशेषणो की जो परम्परा है, वह हिन्दी भाषा की प्रकृति के

---

१. दे० शास्त्री, बौ० गा० दो० च० १०।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १४।

३ दे० वही पृ० २, प० ६२।

४. दे वही, पृ० ०४, प० २२।

५. दे वही, पृ १६, प० ८।

६ दे० वही, पृ० २१, प० ३२।

७. दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १६।

८ दे वही, च० ३८।

अनुकूल नहीं[1]। संस्कृत के उच्च, उच्चतर और उच्चतम तथा अंगरेजी के इसी प्रकार के समानार्थी विशेषण वाले शब्द हिन्दी में नहीं मिलते। जो थोड़े-बहुत मिलते भी हैं, वे संस्कृत के प्रभाव के ही कारण, और वे भी अपने मूल तत्सम रूप में ही रहते हैं। संस्कृत तथा अंगरेजी से भिन्न हिन्दी की यह अपनी विशेषता है, जो उसके आदिकाल (सन्धाभाषा) में वर्तमान है। सम्पूर्ण सन्धाभाषा के साहित्य में तुलनात्मक विशेषणों का ऐकान्तिक अभाव स्पष्ट तथा उल्लेखनीय है। सन्धाभाषा को हिन्दी का आदि रूप मानने के सिलसिले में यह एक बहुत ही सबल और सुन्दर प्रमाण है।

संख्यावाचक विशेषण

संख्यावाचक विशेषण तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं:[2]

१ निश्चित संख्यावाचक
२ अनिश्चित संख्यावाचक तथा
३. परिमाणबोधक।

सिद्धों की सन्धाभाषा में इन तीनों श्रेणियों के रूप उपलब्ध हैं।

निश्चित संख्यावाचक विशेषण

निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के जो रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं, वे निम्नांकित उप विभागों में रखे जा सकते हैं:

(क) पूर्णांक-बोधक (Cardinals)
(ख) अपूर्णांक-बोधक (Fractionals)
(ग) क्रमवाचक (Ordinals)
(घ) *समुदाय-वाचक* (Aggregatives) *तथा*
(ङ) समूह-बोधक (Collectives)[3]

---

१ दे० Kellogg, Rev. S. H. A Grammar of the Hindi Language, London, 1938, पृ० १३६।

२ दे० का० प्र० गुरु . हिन्दी व्याकरण काशी ना० प्र० सभा, सं० २००९ वि०, पृ० १३५।

३ *गुरु ने इसे समुदायवाचक के ही अन्तर्गत रखा है, पर केलॉग ने* इसे अलग स्थान दिया है। दे० Kellogg : A Grammar of the Hindi Language, *1938*, पृ० १६३।

पूर्णांक-बोधक

पूर्णांक-बोधक विशेषण के जो रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध हैं, उनमें सभी पूर्णांक सख्याओं के रूप नहीं मिलते। केवल साम्प्रदायिक महत्त्व रखने वाली तेरह पूर्णांक सख्याओं के रूप ही यहाँ उपलब्ध होते हैं, जिनका विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

एक

एक की सख्या के लिए सन्धाभाषा में भिन्न-भिन्न सात रूप मिलते हैं :

एक[1]

एक्क[2]

एकि[3]

एकु[4]

एक्कु[5]

एके[6] (एक ही) तथा

एक्के[7] (एक ही)।

इनमें प्रथम पाँच रूप केवल सख्या का बोध कराते हैं, पर अन्तिम दो रूपों में अवधारण का पुट मिला हुआ है।

---

१ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० ३ और १०।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १७, प० १३ और पृ० ३८, प० ११०।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १७।

४ दे० वही, च० ७, १५ और -४।

५. दे० बागची : दोहाकोश पृ० प० २०/२६, ३३/७६, ३७ ९७ ४०/१, ४५ २-।

६. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० २८।

७. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० ११०।

दो

दो की संख्या के लिए दो रूप उपलब्ध है

दुइ[1] तथा

दो[2]।

तीन

तीन की संख्या के लिए चार रूप मिलते है

तिअ[3]

तिण्ण[4]

तिणि[5] तथा

तिनि[6]।

चार

चार की संख्या सूचित करनेवाला केवल एक ही रूप सन्धाभाषा मे उपलब्ध है

चारि[7]

पाँच

पांच के लिए निम्नांकित दो रूप सन्धाभाषा मे मिलते हैं

पञ्च[8] तथा

पाञ्च[9]।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० १४।

२ दे० वही च० १५।

३ दे० वही च० २८ और २९।

४ दे० बागची दोहाकोश पृ ९३ प० ३६।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० १८।

६ दे० वही च० ७।

७ दे० वही च० ५०।

८ दे० वही, च० १, १३, १०, ४७ और ४९ तथा बागची दोहाकोश पृ० ४१, प० ७ और पृ० ४०, प० २८।

९ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १२, १४ और ४५।

छह

सन्धाभाषा मे छह की संख्या सूचित करनेवाले रूपो की संख्या दो है .

छड[1] आर

सडि[2] ।

आठ

सात की संख्यावाला कोई भी रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध नही । आठ के लिए केवल एक रूप मिलता है

आट[3] (स० अष्ट का रूप)

नौ के लिए भी कोई रूप उपलब्ध नही ।

दस बारह तथा चौदह

दहाई की संख्याओ मे दस से बीस के भीतर केवल दस बारह तथा चौदह की संख्या सूचित करनेवाले एक-एक रूप मिलते हैं, जो क्रमशः ये हैं

दह[4]

द्वादश[5] (स० का तत्सम रूप) तथा

चउदह[6] ।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ९ ।

२. दे० वही, च० ४५ ।

३ दे० वही, च० १५ ।

४. दे० वही च० ३५ और ५०, बागची दोहाकोश, पृ० २४, प० ४३ ।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ३४ ।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३५, प० ६६ ।

तीस

अशिक्षित जनता में ऊँची संख्याओं के लिए दो-दस, तीन-बीस जैसे प्रयोग आज भी वर्तमान है। सन्ध्याभाषा में तीस की संख्या के लिए ऐसे ही रूप का प्रयोग मिलता है

तिअस[1] (त्रिदश=तीस)

उसके बाद की संख्याओं में केवल बत्तीस तथा चौंसठ के दो-दो रूप उपलब्ध हैं, जो क्रमश नीचे अंकित हैं

बत्तीस

बतिस[2] और बतिस[3]।

चौंसठ

चउशटि[4] और चौसठ[5]।

इन शब्द युग्मों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इनमें श-कारबहुल पूर्वी बोली की विशेषता तो मिलती ही है, हिन्दी की स-कार प्रवृत्ति का भी प्रारम्भ लक्षित होने लगता है।

पूर्णाक बोधक संख्याओं के साम्प्रदायिक महत्व का जो संकेत ऊपर किया गया है, उसके सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि एक की संख्या का सिद्धों के सम्प्रदाय में बहुत बड़ा महत्त्व है, क्योंकि वे परमात्मा को एक मानते हैं। वाम तथा दक्षिण इडा-पिंगला आदि दो पक्षों के प्रसंगों में दो की संख्या का उल्लेख हुआ है। तीन भुवन तथा तीन धातुओं के विवेचन में तीन की संख्या उल्लिखित हुई है। चतुरानन्द के कारण चार की तथा पंचमहाभूत के विवेचनार्थ पाँच की संख्याओं का उल्लेख हुआ है। मानव की छह गतियों के विवेचन में छह की संख्या का उल्लेख हुआ है। अष्टसिद्धि तथा दसों दिशाओं के प्रसंग में आठ तथा दस की संख्याओं का वर्णन मिलता है। दारिकपाद ने

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० औ दो० च० २८।
२ दे० वही च० १७।
३ दे० वही च० २७।
४ दे० वही, च० ३।
५. दे० वही, च० १०।

द्वादश भुवनों की तथा कुछ अन्य सिद्धाचार्यों ने चौदह भुवनों की कल्पना की है। इसलिए, बारह तथा चौदह की सख्याओं का भी उल्लेख हो सका है। बत्तीस योगिनियों तथा चौंसठ कोष्ठकों के प्रसगो मे बत्तीस तथा चौंसठ की सख्याओं का उल्लेख मिलता है।

अपूर्णाक बोधक

अपूर्णाक-बोधक विशेषण का केवल एक रूप सन्धाभाषा मे उपलब्ध है :

अध[1] (आधा),

जो सस्कृत के अर्ध का ही अनुकरण मात्र है।

क्रम-वाचक

प्रथम

क्रमवाचक विशेषण के रूपों मे प्रथम के लिए पहिल[2] रूप मिलता है।

द्वितीय

द्वितीय के लिए कोई भी रूप सन्धाभाषा मे उपलब्ध नही।

तृतीय

तृतीय के लिए जो शब्द मिलता है, वह निम्नाकित है

तइला[3]

चतुर्थ

चतुर्थ के लिए तीन शब्द मिलते हैं

चउ[4]

चउट्ठ[5] तथा

चउत्थ[6]।

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २७।

२. दे० वही, च० २०।

३. दे० वही, च० ५०।

४ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४०, प० ५।

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० ९६ तथा पृ० ४०, प० ५।

६ दे० वही, पृ० १६, प० ११।

इन रूपो म पहला रूप 'चउ' समुदाय वाचक के रूप में भी प्रयुक्त मिलता है।[1] ये तीनो ही रूप संस्कृत 'चतुर्थ' के अनुरूप हैं, जिनमे अन्तिम दो तो निश्चय ही सस्कृत के बहुत निकट हैं।

दशम

क्रमवाचक विशेषणो का केवल एक रूप और मिलता है। वह है सस्कृत दशम का रूप दशमि[2]। इन रूपो के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्रमवाचक *विशेषण का रूप सन्धाभाषा मे उपलब्ध नहीं। पूर्णाक-बोधक विशेषणो की* भांति ही इन क्रमवाचक रूपों का भी साम्प्रदायिक महत्त्व है।

समुदाय-बोधक

समुदाय-बोधक विशेषणो के रूप सन्धाभाषा मे मिलते हैं। तीन की सख्या का समूह सूचित करनेवाले दो रूप उपलब्ध हैं। पाँच के समूह का सूचक रूप केवल एक है। चार के समूह का सूचक शब्द ऊपर उल्लिखित हो चुका है। शेष तीना रूप क्रमश निम्नाकित हैं

तिना[3] (तीनो)

तिनिएँ[4] (तीनो) तथा

पञ्चेहि[5] (पाँचो)।

'पञ्चहि' का वास्तविक अर्थ 'पाँचो ही' है और इस प्रकार वह अवधारण से सयुक्त रूप कहा जा सकता है।

समूह वाचक

समूह वाचक विशेषणो के पाँच रूप सन्धाभाषा मे मिलते हैं। ये पाँचो रूप दो की सख्या के समूह के द्योतक हैं। जैसे 'कोडी' शब्द बीस की सख्या के समूह का परिचायक है वैसे ही सन्धाभाषा म वणी शब्द दो के समूह

---

१. दे० बागची दोहाकोश पृ० ८, प० ३४।

२ दे० वही, च० १२।

३. दे० वही, च० ३३।

४ दे० वही, च० १६।

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१, प० ८।

का बोधक है। इस एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न पाँच रूप मिलते हैं, जो निम्नांकित हैं

विण्ण[१]

वेण्ण[२]

वेणि[३]

वेण्णि[४] तथा

वेंवि[५]।

सन्धाभाषा म एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूपा के अस्तित्व के उदाहरण यहाँ भी मिलते हैं।

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

अनिश्चित सख्यावाचक विशेषणो के रूप सन्धाभाषा म प्रचुर मात्रा म उपलब्ध है। ये रूप निम्नांकित हैं

अउण[६] (अन्य)

अवर[७] (अन्य)

कोडि[८] (कोटि)

चउकोडि[९] (चतुष्कोटि)

चौकोटि[१०] (चतुष्कोटि)

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ५४।

२ दे० वही, पृ० १०, प० ८ और पृ० ४०, प० ५।

दे० वही, पृ० ४२, प० १३ तथा शास्त्री बौ० गा० औ दो०, च० १, ४, १८, १७, १६ और ४८।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० प० २०/२८, २६ ९५, ४१/११ और ४४/२४।

५ दे वही पृ० ३६ प० ६४।

६ दे० वही पृ० ४ प० ८३।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३४।

८ दे० वही, च० २।

९ दे० वही च० ४।

१० दे० वही, च० ३७।

नाना[1]
बहु[2]
विविह[3]
सअल[4]
सअले[5]
सएल[6]
सब[7]
सव्व[8] इत्यादि।

यहाँ उल्लेखनीय है कि यद्यपि कोडि, चउकोडि तथा चौकोटि शब्द पूर्णांक-बोधक-से लगते है, तथापि अपने वर्त्तमान प्रसंगों मे वे अनिश्चित संख्या का बोध कराते हैं, इसीलिए उन्हें इस कोटि मे रखा गया। यह भी स्मरणीय है कि 'बहु' शब्द सन्धाभाषा में परिमाण-बोधक के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है।[9]

परिमाण-बोधक विशेषण

संख्यावाचक विशेषणों का तीसरा तथा अन्तिम विभेद है परिमाण-वाचक विशेषण। सन्धाभाषा मे इसके रूप बहुत अधिक नहीं मिलते। कुछ उपलब्ध रूप निम्नांकित हैं

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २८।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ७६।
३ दे० वही, पृ० ३८, प० १०८।
४ दे० बागची दोहाकोश पृ० प० ३/१, ५/१३, १०/११, ३५/८८ ४१/८ तथा शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० १, ९, १२, १७ और ४४।
५ दे० बागची · दोहाकोश, पृ० २०, प० २६।
६ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० १६।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० १३ और पृ० ४५, प० २७।
८. दे० वही, पृ० २०, प० २३।
९. दे० वही, पृ० २७, प० ५६।

अणूण[1]
अरोस[2]
गरुआ[3] (बहुत अधिक)
परम[4] तथा
सपुण्णा[5]।

इसमे पहले, दूसरे तथा पाँचवें रूप मस्कृत के अनुरूप हैं। पहले रूप की व्युत्पत्ति सस्कृत अत्यन्त से तथा दूसरे की सस्कृत 'अशेष' मे जोडी जा सकती है। चौथा रूप तो अपने तत्सम रूप मे ही है।

क्रियाविशेषण

क्रियाविशेषण के रूपो की विविधता को ध्यान म रखते हुए हिन्दी के वैयाकरणो ने उनका वर्गीकरण एक से अधिक आधारो पर करना उचित समझा है। बीम्स ने भी उनका वर्गीकरण उत्पत्ति और अर्थ इन दो आधारो पर किया है तथा उनके अतिरिक्त एक अन्य श्रेणी मे उन विविध क्रियाविशेषणो को रखा है जो उक्त दोनो आधारो पर विभाजित श्रेणियो से परे रह जाते हैं।[6] कामताप्रसाद गुरु ने क्रियाविशेषणो का वर्गीकरण प्रयोग, रूप

१ दे० वही पृ० ४४ प० ६०।
२ दे० वही, पृ० ४६ प० ३०।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० २८।
४ दे० वही च० ११ तथा बागची दोहाकोश पृ० प० २१/५३, ३७/६७ और ४४/२८।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ११, प० १६।
६ Beams I A Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages of India Vol III पृ० २१६
'Adverbs, therefore may be divided in to two class s nominal & pronominal, with reference to their origin and in to three general catagories of time plac & manner with reference their meaning To these must be added dverbs of Confirmation & negation & certain little helping words which are more adverbial in their nature than anything else'

तथा अर्थ इन तीन आधारो पर किया है ।[1] प्रयोग तथा रूप के आधार पर जो वर्गीकरण किए जाते है उनका कुछ विशेष महत्त्व नही क्योंकि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नही रह जाता । अर्थ के आधार पर जो विभद किए जाते हैं, उनके अन्तगत व भी चले आते हैं । अत निम्नाकित विवचन मे सन्धाभाषा के क्रियाविशषणो का वर्गीकरण अर्थगत आधार पर किया गया है तथा शप दो आधार वाले वर्गीकरणो की ओर भी, आवश्यकतानुसार सकेत किया गया है ।

अर्थ की दृष्टि से क्रियाविशषणो के सामान्यत चार विभद होते हैं

स्थानवाचक क्रियाविशषण	—	Adverb of Place
कालवाचक	—	Time
परिमाणवाचक	—	Manner
रीतिवाचक	—	Miscellaneous Adverbs

सन्धाभाषा मे क्रियाविशषण के ये चारो रूप पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं ।

स्थानवाचक क्रियाविशेषणों का वर्णन

अर्थ की दृष्टि से

स्थानवाचक क्रियाविशषण के कुछ रूप जो सन्धाभाषा मे मिलते हैं, निम्नांकित हैं

अबभन्तरे[2] (भीतर)
एत्थ (यहा)
एत्थ[4] (यहा)
एथु[5] (यहाँ)

---

१ दे० का० प्र० गुरु हिन्दी व्याकरण ना० प्र० सभा, काशी, स० २००९ वि० पृ० १७३ ।

२ दे० बागची दोहाकोश प्रथम भाग मेट्रोपालिटन प्रिंटिंग ऐण्ड पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड १९३ पृ० २५ प० ८६ ।

३ दे० वही पृ० २३ प० २६ ।

४ दे० वहा, पृ० २५, प० ४७ ।

५ दे० बौद्धगान ओ दोहा सम्पादक हरप्रसाद शास्त्री द्वितीय मुद्रण, भाद्र १३५८ बगाब्द प्रकाशक वगीय साहित्य परिषद, चर्या २० ।

एथू[1] (यहाँ)
एहु[2] (यहाँ)
कहिम्पि[3] (कहीं भी)
कहि[4] (कहाँ)
जत्त[5] (जहाँ)
तत्त[6] (तहाँ)
तत्थु[7] (तहाँ)
तह[8] (वहाँ)
दुर[9] (दूर)
दूर[10] (दूर)
नियडि[11] (निकट)
बाहेरिअ[12]
बाहिर[13]
बाहिरें[14]
} (बाहर)

---

१ दे० बौ० गा० दो (वही), च० ४२ ।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१, प० ८ ।
३ दे० वही, पृ० २१, प० ३०-३१ ।
४ दे० वही, पृ० ३६, प० ९१ तथा बौद्धगान ओ दोहा, चर्या ७, २१ और ४६ ।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१, प० ७२ ।
६ दे० वही ।
७ दे० वही, पृ० २६, प० ५२ ।
८. दे० वही, पृ० ३१, प० ७० ।
९. दे० शास्त्री, बौ० गा० दो, च० ३१ ।
१०. दे० वही, च० ५ ।
११. दे० वही ।
१२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० २ ।
१३. दे० वही, पृ० ३५, प० ८६ ।
१४. वही, पृ० ३३, प० ८० ।

प्रयोग की दृष्टि से

प्रयोग के आधार पर क्रियाविशेषणों के तीन भेद होते हैं साधारण, सयोजक तथा अनुबद्ध। इन तीनों के रूप स्थानवाचक क्रियाविशेषणों में उपलब्ध होते हैं। उपर्युक्त 'जत' और 'तत्त' शब्द सयोजक की श्रेणी में आते हैं तथा 'कहिम्पि' और 'वाहेरिअ' शब्द अनुबद्ध की श्रेणी मे। शेष सभी रूप साधारण की श्रेणी के हैं। उक्त अनुबद्ध रूपों को ही उदाहरण भी कहा जाता है तथा उन्हे रीतिवाचक क्रियाविशेषण के अन्तर्गत रखा जाता है। केलाग ने इन्हे Emphatic Particles with Adverbs की एक पृथक कोटि म रख कर इनका अलग से विवेचन किया है।[1]

रूप की दृष्टि से

रूप के आधार पर क्रियाविशेषणों के मूल यौगिक तथा स्थानीय तीन भेद किए जाते है। सन्धाभाषा के स्थानवाचक क्रियाविशेषणों मे ये तीनों रूप भी उपलब्ध होते है। अभ्यन्तर, नियडि वाहेरिअ आदि मूल स्थानवाचक क्रियाविशेषण हैं। सर्वनामों मे प्रत्यय के योग से बनने के कारण एत्थ जत्त, तह इत्यादि रूप यौगिक की श्रेणी मे आते हैं। कुछ स्थानीय रूपों के उदाहरण भी मिलते है। जैसे

घरे घरे[2]

सज्ञा होते हुए भी इन प्रसग मे यह रूप क्रियाविशेषणवत प्रयुक्त हुआ है। इसमे मैथिली मगही भोजपुरी इत्यादि पूर्वी बोलियों की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

उत्पत्ति की दृष्टि से

उत्पत्ति की दृष्टि से सन्धाभाषा के क्रियाविशेषणों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि वे सज्ञा, सर्वनाम तथा प्राचीन क्रियाविशेषणों के रूपों से ही बने है। तगारे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अपभ्रंश के क्रियाविशेषण सज्ञा, सर्वनाम तथा प्राचीन क्रियाविशेषण और क्रियाविशेषण

---

१ दे० Rev S H Kellogg A Grammar of the Hindi Language, Third Edition, Kegan Paul, French, Trubner & Co, Ltd, London, 1938, Page 378

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२, प० ३८।

की अभिव्यक्ति (Adverbial Expression) पर आधृत है।[1] आधुनिक हिन्दी के क्रियाविशेषणों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धीरेन्द्र वर्मा के विचार प्रायः इसी प्रकार के हैं।[2] नीचे संज्ञा, सर्वनाम तथा प्राचीन क्रियाविशेषणों से उद्भूत सन्धाभाषा के क्रियाविशेषणों का विवरण प्रस्तुत है।

संज्ञा > क्रियाविशेषण

उपर्युक्त 'घरे घरे' शब्द में संज्ञा से उद्भूत क्रियाविशेषण का उदाहरण देखा जा सकता है।

सर्वनाम > क्रियाविशेषण

सर्वनामों पर आधृत क्रियाविशेषणों की संख्या कुछ अधिक है। इनके कुछ रूप निम्नांकित हैं

एन्थ
एत्थु
एथु
एहु
वहि
तह इत्यादि।

क्रियाविशेषण > क्रियाविशेषण

प्राचीन क्रियाविशेषणों पर आधृत सन्धाभाषा के कुछ स्थानवाचक क्रियाविशेषण निम्नांकित हैं :

अभन्तर[3]
जत्त
तत्त
दुर

१. दे० G. V. Tagare : Historical Grammar of Apabhransa Poona, 1948, Page 329 Section 152

२. दे० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, संयुक्त प्रान्त, प्रयाग, १९४९, अध्याय १०, पृ०३०८।

३. मध्यग व के विवेचन के लिए देखिए यह ग्रन्थ (पीछे)

दूर

नियडि

बाहिर यादि।

कालवाचक क्रियाविशेषणों का वर्णन

अर्थ की दृष्टि से

कालवाचक क्रियाविशेषण के निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं -

अणुदिण[1] (प्रतिदिन)

अनुदिन[2] (प्रतिदिन)

अहरह[3] (रातदिन)

उणो[4] (पुन)

एत्र[5] (अब)

कहवि[6] (कभी)

खणह[7] (क्षण भर)

खनह[8] (क्षण भर)

जवें[9] (जब)

जवें[10] (जब)

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० २६ तथा शास्त्री बौद्धगान ओ दोहा, च० ५०।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दोहा, च० ४२।

३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४२, प० १६।

४ दे० वही, पृ० २४, प० ४०।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ३५।

६. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४२, प० १३।

७. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १८।

८. दे० वही, च० ६।

९ दे० वही, च० १७।

१०. दे० वही, च २१ और ८४।

जहि[1] (जब)

जाउ[2] (जब)

जाव[3] (जब)

णित्त[4] (नित्य)

णिरन्तर[5] (निरन्तर)

तक्खणे[6] (उसी क्षण)

तवँ[7] (तभी)

तहिं[8] (तब)

ताव[9] (तब तक)

तावइ[10] (तब तक)

तोवि[11] (तब भी)

निति[12]

---

१ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च०३१ ।

२ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २०, प० ६७ ।

३ दे० वही पृ० १०, प० ८, पृ० २८, प० ६० तथा पृ० ४५, प० २८ ।

४ दे० वही, पृ० प० ७/३०, १६/२०, २०/२४ ।

५. दे० वही पृ० ३४, प० ८४ ।

६ दे० वही, पृ० प० ४३/१९, ४४/२३, ४६/३२ ।

७ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च २१, ४४ तथा ४६ ।

८. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २३ ।

९ दे० वही, पृ० प० १०/ , २८/६०, ४५/२८

१०. दे० वही, पृ० २०, प० ६७ ।

११ दे० वही, पृ० २६, प० ६५ ।

१२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३८ ।

निते निते[१]

पढम[२] (पहले)

पहिले[३] (पहले)

पुण[४] (पुन) इत्यादि।

प्रयोग की दृष्टि से

प्रयोग के आधार पर सन्धाभाषा के कालवाचक क्रियाविशेषणों का अध्ययन करने पर उनमें संयोजक, अनुबद्ध तथा साधारण तीनों प्रकार के रूप मिलते हैं। संयोजक वाले रूप निम्नांकित हैं

जवें तवे, जहि तहि इत्यादि।

अनुबद्ध या अवधारण के रूप निम्नांकित हैं

खणह, खनहि, तक्खण, तवें इत्यादि।

साधारण रूप निम्नांकित हैं

निति पहिलें उणो अनुदिन इत्यादि।

रूप की दृष्टि से

रूप की दृष्टि से अध्ययन करने पर अधिकांश रूप मूल क्रियाविशेषण के ही मिलते हैं। स्थानीय क्रियाविशेषणों का कोई भी रूप कालवाचक क्रियाविशेषण में उपलब्ध नहीं। यौगिक के रूप बहुत कम उपलब्ध हैं। 'पहिलें तथा एवें शब्द क्रमशः विशेषण तथा सर्वनाम में प्रत्यय के योग से बनने के कारण इस कोटि में आते हैं।

उत्पत्ति की दृष्टि से

उत्पत्ति की दृष्टि से विचार करने पर संज्ञाओं से उद्भूत कालवाचक क्रियाविशेषणों के निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं

खणह, खनह, खनहिं, अनुदिन इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ३।

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१ प० २०।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० औ दो०, च० १२।

४ दे० वही, च० ४१ तथा बागची दो०, पृ० ४३, प० १६।

सर्वनाम से उत्पन्न क्रियाविशेषणों के रूप निम्नांकित हैं :

जब, जव, जब्बे जहि, एवं इत्यादि।

प्राचीन क्रियाविशेषणों से उद्भूत क्रियाविशेषणों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं

अहरह, इणो, णिन्त, णिरन्तर इत्यादि।

परिमाणवाचक क्रियाविशेषण

सन्धाभाषा के परिमाणवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। इनके कुछ रूप निम्नांकित हैं :

अगुवम्म[1] तथा पर[2] (= परम) ।

रीतिवाचक क्रियाविशेषणों का वर्णन

अर्थ की दृष्टि से

अर्थ की दृष्टि से क्रियाविशेषणों का जो वर्गीकरण होता है, उसका चौथा तथा अन्तिम भेद है रीतिवाचक क्रियाविशेषण। इस कोटि में वे सभी विविध क्रियाविशेषण रखे जाते हैं, जो क्रियाविशेषणों के उपर्युक्त तीन भेदों में समाविष्ट नहीं हो पाते। इसलिए, इनकी संख्या अन्य क्रियाविशेषणों से अधिक होती है। सन्धाभाषा में भी रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या अन्य क्रियाविशेषणों से अधिक है।

सन्धाभाषा के रीतिवाचक क्रियाविशेषणों में प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले रूप निम्नांकित हैं

अइसें[3] (इस प्रकार)
अइसो[4] (इस प्रकार)
एमइ[5] (इस प्रकार)
कइसण[6] (कैसा)

---

१. दे० बागची : दोहाकोष, पृ० २८, प० ६१।
२. दे० वही, पृ० २७, प० ९९।
३. दे० बागची : दोहाकोष, पृ० ३०, प० ६७।
४. दे० वही, पृ० ४३, प० २०।
५. दे० वही, पृ० २६, प० ५४।
६. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० २२।

सइ[1]
कीस[2] (किस प्रकार)
जइसन[3]
जइसा[4]
जइसो[5]
जइसो[6]
जिम[7]
णिच्चल[8]
तइसन[9]
तइसा[10]
तिम[11]
तिभर[12]
मिच्छेहिं[13]
मिच्छें[14] इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८ २९ और ३६।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ८, प० ३।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३७।
४ दे० वही च० ४१ और ४।
५ दे० वही, च० १३ २ और ३।
६ दे० वही, च० १३।
७ दे० वही, च० २८ ३१ ४४ और ४३ तथा बागची दोहाकोश, पृ० प० ११ १३ २३/ ३, २३ ५८ और ३१/३०।
८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४०, प० १३।
९ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३।
१० दे० वही, च० ४६।
११ दे० वही च० ४३ तथा बागची दोहाकोश, पृ० प० १०/४, २३/२३, ३६/८६ और ४५ ०२।
१२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, ५।
१३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १४, प० ३।
१४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २२।

कारण के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले क्रियाविशेषण बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं। जैसे :

किं[1] (क्यों)
किम्पि[2] (क्यों)
केराविं[3] (क्यों) इत्यादि।

अवधारण के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले क्रियाविशेषण निम्नांकित हैं

मत्त[4] और
वि[5]

निश्चय के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले क्रियाविशेषण निम्नांकित हैं

अवस्स[6]
दिढकर[7]

प्रयोग की दृष्टि से

प्रयोग की दृष्टि से रीतिवाचक क्रियाविशेषण के उदाहरणों में संयोजक क्रियाविशेषण के निम्नांकित दस रूप मिलते हैं :

जइसने — तइसन
जइसा — तइसा
जइसो — तइसो
जइसो — तइसो
जिम — तिम

अवधारण के दो रूपों के अतिरिक्त अनुबद्ध के तीन रूप मिलते हैं। ये पाँचों रूप निम्नांकित हैं

मत्त वि, जइसन, मिच्छहि तथा मिच्छें।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३ तथा बागची : दोहाकोश, पृ० ८२, प० १६।

२ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४१, प० ११ और पृ० ४३, प० २० तथा शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० १६ २२, ४६ और ५०।

३ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३३, प० ७८।

४ दे० वही, पृ० ३, प० ५ और पृ० ३२, प० ७१।

५ दे० वही, पृ० प० ३१ ७०, ८१/७२, ९ ५, ८० ३, ८१ २९ तथा शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २२।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२ प० ७५।

७ दे० वही, पृ० ६, प० २३।

शेष सभी रूप प्रयोग की दृष्टि से साधारण क्रियाविशेषण के है।

रूप की दृष्टि से

रूप के आधार पर क्रियाविशेषणों का जो वर्गीकरण होता है, उसकी दृष्टि से रीतिवाचक क्रियाविशेषण के अधिकांश रूप मूल क्रियाविशेषण की कोटि मे ही आते हैं। सर्वनाम के साथ प्रत्यय के संयोग से बने यौगिक रूपों के कुछ उदाहरण निम्नांकित है :

अइसें, एमइ, जिम, तिम इत्यादि।

स्थानीय कोटि के रूप रीतिवाचक क्रियाविशेषण मे उपलब्ध नही होते।

सन्धाभाषा मे क्रियाविशेषणों के कुछ ऐसे रूप भी मिलते है, जो विभिन्न प्रसंगों मे भिन्न-भिन्न अर्थ के सूचक हैं। उदाहरण के लिए, रीतिवाचक (कारण) क्रियाविशेषण का रूप 'कि'[1] प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है।[2] दूसरा रूप है 'किम्पि', जो रीतिवाचक (कारण) क्रियाविशेषण[3] तथा परिमाणवाचक क्रियाविशेषण[4] दोनों के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

सन्धाभाषा के क्रिया रूप

अपभ्रंश के क्रिया रूपों मे प्रा० भा० आ० तथा प्राकृत के क्रिया-रूपों की अपेक्षा सरलता स्पष्ट लक्षित होता है।[5] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का भी मत है कि 'म० भा० आ० काल मे आते आते क्रिया की बनावट सरल होने लगी।'[6] बीम्स ने सरलता को भारोपीय भाषाओं की सभी शाखाओं की अपनी विशेषता माना है।[7] सन्धाभाषा के क्रिया-रूपों मे सरलीकरण की यह प्रवृत्ति

१. दे० यह अध्याय, पृ० २५५, पा० टि० १।

२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० २३।

३. दे० यह अध्याय, पृ० २५५, पा० टि० २।

४. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १६।

५. दे० तगारे : हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑव अपभ्रंश, पूना (वही), पृ० २८२।

६. दे० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९४९, पृ० २८२।

७. दे० बीम्स : ए कम्पेरेटिव ग्रामर आव दि मॉडर्न आर्यन लैंग्वेजेज़ ऑव इण्डिया, जि० ३, पृ० २ और ३।

स्पष्ट हो जाती है। अत, सन्धाभाषा के क्रिया रूपों की बनावट मे आ० भा० आ० के क्रिया-रूपो मे मिलनेवाले सूक्ष्मतर भेद नही मिलते तथा एक ही प्रकार की बनावट के क्रिया-रूप भिन्न भिन्न कालो पुरुषो, लिगो तथा वचनो मे प्रयुक्त होत हैं। इसमे सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

सन्धाभाषा म सकर्मक तथा अकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाएँ मिलती हैं। जैसे

सकर्मक भखअ[1] (खाता है)
पिवइ[1] (पीता है)
हरइ[2] (हरण करता है) इत्यादि।

अकर्मक
जुझअ[3] (जूझता है)
आवइ[4] (आता है)
घुमइ[5] (घूमता है) इत्यादि।

प्रेरणार्थक

साधारण क्रियाओ के अतिरिक्त सन्धाभाषा मे प्रेरणार्थक क्रियाएँ भी मिलती हैं। जैसे

वन्धावए[7] (बँधवाते हैं)

सामान्यत, क्रिया मे वाच्य, काल पुरुष, वचन, लिग तथा अर्थ के कारण विकार होता है। हिन्दी म त्रियाओ के तीन वाच्य होते हैं कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य। सन्धाभाषा मे कर्तृवाच्य के रूप सबसे अधिक

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २१।
२. दे० वही, च० ६।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ६४।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३।
५. दे० वही, च० ४२।
६ दे० वही, च० ३६।
७. दे० वही, च० २२।

संख्या में मिलते हैं। कर्मवाच्य के रूप कम मिलते हैं . भाववाच्य के रूप बहुत थोड़ी संख्या में मिलते हैं।

कार्य की पूर्णता तथा अपूर्णता की दृष्टि से क्रिया के कालों के तीन भेद किए जाते है सामान्य, अपूर्ण तथा पूर्ण। सन्धाभाषा में क्रिया के सामान्य रूपों की प्रधानता है। उसमें सामान्य वर्तमान, सामान्य भूत तथा सामान्य भविष्यत् कालों के रूप अधिक उपलब्ध होते हैं। थोड़े से क्रिया रूप पूर्ण वर्त्तमान काल के मिलते हैं। अपूर्ण काल के क्रिया-रूप सन्धाभाषा में एकदम नहीं मिलते।

वक्ता तथा श्रोता की दृष्टि से हिन्दी में तीन पुरुष होते हैं . उत्तम, मध्यम तथा अन्य। सन्धाभाषा के क्रिया रूपों में तीनों पुरुषों के रूप उपलब्ध होते हैं।

वचन की दृष्टि से, हिन्दी-क्रियाओं की भाँति, सन्धाभाषा के क्रिया-रूपों में एकवचन तथा बहुवचन के रूप मिलते हैं। द्विवचन के रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते।

अपभ्रंश में नपुंसक लिंग नहीं मिलता। अत, सन्धाभाषा के क्रिया रूपों को, लिंग की दृष्टि से, पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग इन दो वर्गों में रखा जा सकता है।

उपर्युक्त दृष्टियों से सन्धाभाषा के क्रिया रूपों में जो रूपान्तर होते हैं, उनका विवेचन नीचे किया जाता है। पहले कर्त्तृवाच्य के रूपों का विवेचन किया जाता है।

कर्त्तृवाच्य के रूप

सन्धाभाषा के कर्त्तृवाच्य के क्रिया-रूपों में सामान्य वर्तमान काल के रूप अधिक मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पूर्ण वर्त्तमानकाल, सामान्य भूतकाल तथा सामान्य भविष्यत् काल के कुछ रूप उपलब्ध होते हैं। इन रूपों का विवेचन नीचे किया जाता है।

सामान्य वर्तमान काल

सन्धाभाषा के सामान्य वर्तमान काल के क्रिया रूपों में उत्तमपुरुष स्त्रीलिंग के रूप नहीं मिलते।[1]

---

१ पुरुष सिद्धों द्वारा रचित होने के कारण इस प्रकार के प्रयोग के अवसर सम्भवतः नहीं आ सके।

उत्तमपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सामान्य वर्तमान काल के उत्तमपुरुष, एकवचन, पुलिंग क्रिया-रूप प्राय मि तथा हुँ कारान्त हैं। कुछ रूप वि तथा लि-कारान्त भी हैं। जैसे :

मि-कारान्त जाणमि[१] (जानता हूँ)
पुछमि[२] (पूछता हूँ)
हुँ कारान्त खेलहुँ[३] (खेलता हूँ)
जाणहुँ[४] (जानता हूँ)
वि-कारान्त कहवि[५] (कहता हूँ)
दिवि[६] (देता हूँ)
लि कारान्त सुनेलि[७] (सोता हूँ) इत्यादि।

इस वर्ग मे बहुवचन क्रिया के रूप सन्धाभाषा मे नही मिलते।[८]

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि एक ही क्रिया के भिन्न-भिन्न कई रूप उपलब्ध होते है, जिससे सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। जैसे 'जानता हूँ' के समानार्थी उपर्युक्त 'जाणहुँ', 'जाणमि' तथा 'देता हूँ' के समानार्थी देहुँ तथा 'दिवि' रूप मिलते हैं।

मध्यमपुरुष, एकवचन पुलिंग रूप

सामान्य वर्तमान काल के मध्यमपुरुष एकवचन पुलिंग रूप प्रायः इ-कारान्त हैं। जैसे

करिअइ[९] (करत हो)

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६०।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १०।
३ दे० वही, च० १२।
४ दे० वही च० २२।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ६२।
६ दे० शास्त्री बौ गा० दो०, च० २९।
७ दे० वही, च० १८।
८ सिद्धो ने अपने अनुभव या उपदेश अकेले अकेले ही व्यक्त किए हैं, सम्भवत इसलिए उत्तमपुरुष, बहुवचन क्रियाओ के प्रयोग के अवसर सन्धाभाषा मे नही आ सके।
९ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १।

बुझसि[1] (समझते हो)

पुच्छसि[2] (पूछते हो) इत्यादि ।

इस वर्ग के बहुवचन क्रिया के रूप इन रूपों से भिन्न नहीं मिलते ।

मध्यमपुरुष, एकवचन स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य वर्तमान काल के मध्यमपुरुष स्त्रीलिंग रूप प्रायः अ, इ तथा उ-कारान्त हैं । जैसे

अ-कारान्त

विकणअ[3] (बेचती हो)

इ-कारान्त

आइससि[4] (आती हो)

जासि[5] (जाती हो)

उ-कारान्त

टालिउ[6] (नाश करती हो)

इस वर्ग में बहुवचन क्रिया के रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते ।

अन्यपुरुष, एकवचन पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य वर्तमान काल के अन्यपुरुष, एकवचन, पुंलिंग क्रिया-रूप सबसे अधिक मिलते हैं । ये रूप अ, आ, आँ, इ, ई, उ, ए तथा ओ-कारान्त हैं । जैसे ।

अ-कारान्त

खणअ[7] (खोदता है)

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० १४ ।
२. दे० वही ।
३. दे० वही, च० १८ ।
४. दे० वही, च० १० ।
५. दे० वही ।
६. दे० वही, च० १८ ।
७. दे० वही, च० २१ ।

मखअ[1] (खाता है)

भणअ[2] (कहता है)

बुझअ[3] (समझता है)

छिजअ[4] (नष्ट होता है)

वाजअ[5] (बजता है)

आ-कारान्त

घोलिआ[6] (घोलता है)

उएला[7] (उदित होता है)

ऑ कारान्त

उछलिऑ[8] (ऊपर उठता है)

इ-कारान्त

करेइ[9] (करता है)

घोलइ[10] (घोलता है)

सुणइ[11] (सुनता है)

घुमइ[12] (घूमता है)

सोहइ[13] (शोभता है)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २१ ।

२ दे० वही ।

३ दे० वही, च० ३३ ।

४ दे० वही, च० ४५ ।

५ दे० वही, च० ३१ ।

६ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१, प० ८८ ।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५० ।

८ दे० वही, च० १६ ।

९ दे० वही, च० १४ ।

१० दे० वही, च० १६ ।

११ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४२ प० १२ ।

१२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३६ ।

१३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३४, प० ८३ ।

ई कारान्त

जानी[1] (जानता है)
पइसी[2] (प्रवेश करता है)

उ-कारान्त

करउ[3] (करता है)
साहिउ[4] (साधता है)
मरिअउ[5] (मरता है)

ए-कारान्त

कहिए[6] (कहता है)
दे[7] (देता है)
लागे[8] (लगता है)

ओ-कारान्त

बद्धो[9] (बँधता है)

इस वर्ग के क्रिया-रूपों में भी एक ही अर्थवाली क्रियाओं के भिन्न-भिन्न कई रूप मिलते हैं। जैसे, 'कहता है' के लिए कहइ, कहिए इत्यादि।

अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के सामान्य वर्तमान अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग क्रिया रूप प्राय: अ, आ, इ तथा उ कारान्त हैं। जैसे

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ११।
३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २२।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १७, प० १३।
५. दे० वही, पृ० २७, प० ५६।
६. दे० वही, पृ० ४१, प० १०।
७. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३०।
८ दे० वही, च० २६।
९. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० १०, प० १३।

अ कारान्त

विखण्डिअ[1] (तोड़ते हैं)

आ-कारान्त

मातेला[2] (उन्मत्त होते हैं)

इ कारान्त

छुवइ[3] (छेदन करते हैं)

राहिअइ[4] (रहते हैं)

उ कारान्त

पीअउ[5] (पीते हैं)

अन्यपुरुष एकवचन, स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के सामान्य वर्तमान अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग क्रियारूपों में बहुवचन के रूप नहीं मिलते। अत, केवल एकवचन के रूपों का वर्णन किया जाता है। ये रूप प्राय अ तथा इ-कारान्त हैं। जैसे

अ-कारान्त

खाअ[6] (खाती है)

जागअ[7] (जागती है)

इ-कारान्त

देक्खइ[8] (देखती है)

करइ[9] (रोती है)

इस वर्ग के क्रिया रूपों में भी एक अर्थ की क्रियाओं के भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं। जैसे खाती है के लिए खाअ, खज्जइ इत्यादि।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३० प० ६८।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५०।
३ दे० वही, च० ४५।
४ दे बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १७।
५. दे० वही, पृ० २७, प० ५६।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २।
७. दे० वही।
८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २८, प० ६२।
९. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५०।

पूर्ण वर्तमान काल

उत्तमपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के पूर्ण वर्तमान काल के क्रिया-रूपों में उत्तमपुरुष स्त्रीलिंग रूप नहीं मिलते। अतः, केवल पुंलिंग रूपों का ही वर्णन किया जाता है। उत्तमपुरुष, पुंलिंग, एकवचन क्रिया के रूप इ-कारान्त हैं। जैसे :

घेणिलि[1] (ग्रहण किया है)
मेलिलि[2] (प्राप्त किया है)

इस वर्ग में बहुवचन क्रिया-रूप नहीं मिलते।[3]

मध्यमपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा के पूर्ण वर्तमान, मध्यमपुरुष, एकवचन, पुंलिंग क्रिया का एक रूप मिलता है

आइलेंसि[4] (आए हो)

इस वर्ग में स्त्रीलिंग तथा बहुवचन क्रियाओं के रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते।

अन्यपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा में पूर्ण वर्तमान काल के अन्यपुरुष, एकवचन, पुंलिंग क्रिया रूप प्रायः अ, आ, उ तथा ओ कारान्त हैं। जैसे

अ-कारान्त

किअ[5] (किया है)
पडय[6] (पड़ा है)

आ कारान्त

उइता[7] (उदित हुआ है)
वइठा[8] (बैठा है)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० १०।
२ दे० वही, च० ८।
३. दे० पा० टि०, १६।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४४।
५ दे० वही च० १६।
६. दे० वही च० ६।
७ दे० वही, च० ३०।
८. दे० वही, च० १।

उ-कारान्त

किउ[1] (किया है)

फुल्लिअउ[2] (फूला है)

ओ-कारान्त

लुक्को[3] (छिपा है)

अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग रूप

पूर्ण वर्तमान काल के अन्यपुरुष, बहुवचन पुंलिंग क्रिया के उदाहरण सन्धाभाषा में कम मिलते हैं। जैसे

मौलिल[4] (फूले हैं)

अन्यपुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा के निम्नांकित ह्रस्व इ-कारान्त उदाहरण में पूर्ण वर्तमान काल, अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग क्रिया का रूप उपलब्ध होता है

लागेलि[5] (लगी है)

यहाँ उल्लेखनीय है कि इस क्रिया-रूप का व्यवहार बहुवचन की भाँति भी एक स्थान पर हुआ है।[6]

अन्यपुरुष, बहुवचन, स्त्रीलिंग रूप

पूर्ण वर्तमान काल, अन्यपुरुष, बहुवचन, स्त्रीलिंग क्रिया के रूप दीर्घ ई-कारान्त हैं। जैसे

लागेली[7] (लगी है)

यहाँ उल्लेखनीय है कि पूर्ण वर्तमान काल के स्त्रीलिंग क्रिया रूपों में एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में बहुत कम अन्तर है।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।
२. दे बागची : दोहाकोश, पृ० ३८, प० १०८।
३ दे० वही, पृ० ३५, प० ८९।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो० च० २८।
५. दे० वही, च० १७।
६. दे वही, च० १६।
७ दे वही, च २८।

सामान्य भूतकाल

उत्तमपुरुष एकवचन, पुंलिंग रूप

सामान्य वर्तमान काल के क्रिया रूपो की भाँति सन्धाभाषा के सामान्य भूतकाल के क्रिया रूपो मे भी उत्तमपुरुष, स्त्रीलिंग क्रिया रूपो के उदाहरण नही मिलते उत्तमपुरुष एकवचन पुलिंग रूप प्राय आ, उ तथा ल कारान्त है। जैसे :

आ कारान्त

सहारा[1] (सहार किया)

दिठा[2] (देखा)

उ कारान्त

फोटउ[3] (काट दिया)

घालिउ[4] (घायल किया)

ल कारान्त

बुझिल[5] (समझ गया)

जितेल[6] (जीत गया)

इस वर्ग के बहुवचन क्रिया के रूप सन्धाभाषा मे नही मिलते।

मध्यमपुरुष एकवचन पुलिंग रूप

सन्धाभाषा मे सामान्य भूतकाल के मध्यमपुरुष, एकवचन पुलिंग रूप प्रायः उ कारान्त है। जैसे

किअउ[7] (किया)

दीअउ[8] (दिया)

इस वर्ग के बहुवचन तथा स्त्रीलिंग क्रियारूप इनसे भिन्न नही मिलते।

१ दे० शास्त्री, बौ० गा० दो० च० २० ।
२ दे० वही च० १ ।
३ दे० वही च० १२।
४ दे० वही।
५ दे० वही च० ३५।
६ दे० वही, च० १२।
७ दे० बागची दोहाकोष, पृ० ३६, प० ११२।
८ दे० वही।

अन्यपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य भूतकाल के अन्यपुरुष, एकवचन पुंलिंग क्रिया-रूप प्राय ल, ला लि तथा ली-कारान्त हैं। जैसे :

ल कारान्त

आइल[1] (आया)

ला कारान्त

आइला[2] (आया)
गला[3] (गया)

लि कारान्त

फिटलि[4] (दूर हुआ)

ली-कारान्त

लेली[5] (लिया) इत्यादि।

अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग क्रिया-रूप बहुत कम मिलते हैं। ये रूप प्राय ला-कारान्त हैं। जैसे :

पाकेला[6] (पक गए)
मातला[7] (मत्त हुए)

अन्यपुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य भूतकाल के अन्यपुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग क्रिया-रूप प्राय अ, इ, ल तथा ली-कारान्त हैं। जैसे :

अ कारान्त

जलिअ[8] (जली)
पोहाअ[9] (समाप्त हुई)

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ।
२. दे० वही, च० ७।
३ दे० वही।
४. दे० वही, च० ५०।
५. दे० वही, च० ४६।
६. दे० वही, च० ५०।
७. दे० वही।
८ दे० वही, च० ४७।
९. दे० वही, च० १६।

-इ कारान्त

पोहाइ[1] (समाप्त हुई)

ल कारान्त

मएल[2] (मर गई)

-ली कारान्त

पोहाइली[3] (समाप्त हुई)

अन्यपुरुष बहुवचन स्त्रीलिंग रूप

सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष बहुवचन स्त्रीलिंग क्रिया रूप प्राय उ कारान्त हैं। जैसे

उह्लसिउ[4] (उल्लसित हुई)

सामान्य भूतकाल के क्रिया रूपों मे भी एक ही क्रिया के भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों मे यह देखा जा सकता है। यह सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है।

सामान्य भविष्यत काल

उत्तमपुरुष एकवचन पुलिंग रूप

सन्धाभाषा के सामान्य भविष्यत काल के क्रिया रूपों मे उत्तमपुरुष, एकवचन पुलिंग *क्रिया रूप प्राय मि तथा व कारान्त हैं। जैसे*

मि कारान्त

जीवमि[5] (जीऊँगा)

पीवमि[6] (पीऊँगा)

---

१ दे० शास्त्री बौ गा० दो च० २८।

२ दे० वही च० २३।

३ दे० वही च० २८

४ दे० वही च० २७।

५ दे० वही च० ४।

६ दे० वही।

व-कारान्त

खाइव[1] (खाऊँगा)

जाइव[2] (जाऊँगा)

सामान्य भविष्यत् काल, उत्तमपुरुष, बहुवचन पुंलिंग तथा उत्तम-पुरुष, स्त्रीलिंग (दोनो वचन) क्रियाओ के रूप सन्धाभाषा मे नही मिलते।

मध्यमपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सामान्य भविष्यत काल के मध्यमपुरुष, एकवचन, पुलिंग क्रिया रूप प्रायः सि तथा हु-कारान्त है। परन्तु, पुलिंग, बहुवचन तथा स्त्रीलिंग दोनो वचनो के क्रिया-रूप इनसे भिन्न नही मिलते। ये रूप निम्नांकित हैं

सि-कारान्त

परिआणसि[3] (जानोगे)

पावसि[4] (पाओगे)

हु-कारान्त

लग्गहु[5] (लगोगे)

अन्यपुरुष, एकवचन, पुंलिंग रूप

सन्धाभाषा मे सामान्य भविष्यत् काल, अन्यपुरुष, पुंलिंग, एकवचन के रूप प्रायः अ तथा व-कारान्त है। जैसे

अ कारान्त

उइजअ[6] (उत्पन्न होगा)

-वकारान्त

लोडिव[7] (लडेगा)

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ३६।

२. दे० वही, च० १४।

३. दे० बागची : दोहाकोष, पृ० २८, प० ६०।

४. दे० वही।

५. दे० वही, पृ० ६, प० २३।

६. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ४५।

७. दे० वही, च० २८।

सामान्य भविष्यत् काल के अन्यपुरुष, बहुवचन, पुंलिंग क्रिया रूप के उदाहरण सन्धाभाषा में नहीं मिलते।

अन्यपुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग रूप

सन्धाभाषा में सामान्य भविष्यत् काल के अन्यपुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग क्रिया रूप इ-कारान्त हैं। जैसे :

पूरइ[1] (पूरी होगी)

उइ[2] (उदित होगी)

सामान्य भविष्यत् अन्यपुरुष बहुवचन स्त्रीलिंग क्रिया-रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते। परन्तु, पतिआइ[3] क्रिया रूप को, यदि हम चाहें, तो इस वर्ग में रख सकते हैं, हालांकि दोनों वचनों तथा लिंगों में इसके रूपों में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता।

अर्थ की दृष्टि से क्रिया रूपों का विवेचन

अर्थ की दृष्टि से, हिन्दी में क्रियाओं के मुख्य पाँच भेद होते हैं : निश्चयार्थ, आज्ञार्थ, सम्भावनार्थ, संकेतार्थ तथा सन्देहार्थ।[4] इनमें से सन्देहार्थ के रूप सन्धाभाषा में नहीं मिलते। शेष चार प्रकार के रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं, जिनमें निश्चयार्थ तथा आज्ञार्थ के रूप सबसे अधिक संख्या में मिलते हैं।

निश्चयार्थ रूप

बिना किसी विशेष प्रयोजन के साधारणतः जो कुछ कहा जाता है, उसे निश्चयार्थ की कोटि में रखा जाता है। अतः, सन्धाभाषा के अधिकांश रूप इसी वर्ग के हैं। जैसे

---

१ दे० बागची : दोहाकोष, पृ० ३६, प० ९४।

२ दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ८।

३. दे० वही, च० २६।

४. दे० गुरु : हिन्दी-व्याकरण, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००६, पृ० ३३४।

गाइ[1] (गाता है)
पेखइ[2] (देखता है)
हरइ[3] (हरण करता है) इत्यादि।

आज्ञार्थ रूप

आज्ञा सूचित करनेवाली क्रियाएं आज्ञार्थ की कोटि मे आती है। सन्तो की वाणी होने के कारण सन्धाभाषा मे इस प्रकार के रूप प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। ये क्रिया रूप सदा सामान्य वर्तमान मध्यमपुरुष मे रहते है। एकवचन बहुवचन तथा पुंलिंग स्त्रीलिंग मे इनके रूप नही बदलते। इनमे से कुछ रूप निम्नांकित हैं

देखहु[4] (देखो)
मारहु[5] (मारो) इत्यादि।

सम्भावनार्थ रूप

सन्धाभाषा मे सम्भावना सूचित करनेवाले कुछ क्रिया रूप निम्नांकित हैं

पइसइ[6] (प्रविष्ट न हो)
बुझसि[7] (समझोगे)

संकेतार्थ रूप

सन्धाभाषा मे उपलब्ध संकेतार्थ क्रिया रूपो के उदाहरण निम्नांकित है

लग्गहु[8] (लगोगे)
होइ[9] (*होता या होती है*)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो च १८।
२ दे वही च० ८२।
३ दे० बागची दोहाकोश पृ० २९, प० ८८।
४ दे० वही पृ० ३४, प ८३।
५ दे० वही पृ० ३ प० ३।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १४।
७ दे० वही, च० ४१।
८ दे० बागची दोहाकोश पृ० ६, प० २३।
९ दे० वही, पृ० १६ प० ७।

कर्मवाच्य के रूप

हिन्दी मे कर्मवाच्य का प्रयोग सस्कृत तथा अँगरेजी की अपेक्षा बहुत कम होता है।[1] स भाभाषा मे भी कर्तृ वाच्य के क्रिया रूपों की अपेक्षा कर्मवाच्य के क्रियारूपों की सख्या कम है। इनमे सामान्य वर्तमान, सामान्य भूत तथा सामान्य भविष्यत तीनों कालो के रूप उपलब्ध होते है। ये रूप प्राय अन्य पुरुष मे रहते है। दोनो वचनो तथा लिंगो मे इनके रूप प्राय एक समान रहते है। इनका विवरण नीचे दिया जाता है

सामान्य वर्त्तमान काल

सन्धाभाषा मे कर्मवाच्य के सामान्य वर्तमान काल के क्रिया रूप प्राय अ, इ, उ ओ तथा इज्जइ कारान्त हैं। जैसे

अ-कारान्त

कहिअ[2] (कहा जाता है)

इ कारान्त

कहिअइ[3] (कहा जाता है)

उ कारान्त

कहिअउ[4] (कहा जाता है)

ओ कारान्त

कहिओ (कहा जाता है)

इज्जइ कारान्त

कहिज्जइ[5] (कहा जाता है)

---

१ दे० केलाग ग्रामर आव दि हिन्दी लैंग्वेज पृ० २५१ तथा मिलाइए गुरु हिन्दी व्याकरण, पृ० २ ।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २ ।
३ दे० वही, पृ० ३२, प० ७८।
४ दे० वही, पृ० १६, प० २०।
५ दे० वही, पृ० २८, प० ६०।
दे० गुरु: २००६, पृ० ३३५ ६ दे० वही, पृ० ४, प० ७।

सामान्य भूतकाल

कर्मवाच्य के सामान्य भूतकाल वाले रूप अ, उ तथा ओ-कारान्त हैं। जैसे

अ-कारान्त

लघिअ[1] (लाँघा जा सका)

उ-कारान्त

पढिअउ[2] (पढ़ा गया)

ओ-कारान्त

दीट्ठओ[3] (देखा गया)

सामान्य भविष्यत्काल

सन्धाभाषा के निम्नांकित उदाहरण मे कर्मवाच्य के सामान्य भविष्यत् काल का रूप मिल सकता है :

दिज्जइ[4] (दिया जाय)

सन्धाभाषा के कर्मवाच्य के क्रिया रूप मे भी एक ही अर्थ वाली क्रियाओ के भिन्न-भिन्न रूपो की स्थिति मिलती है।

भाववाच्य के रूप

सन्धाभाषा के भाववाच्य के क्रिया-रूप अकर्मक होने के अतिरिक्त, प्रायः सामान्य वर्तमान, एकवचन, पु लिंग, अन्यपुरुष मे रहते हैं। भाववाच्य के रूप सन्धाभाषा मे बहुत कम मिलते हैं। ये रूप प्राय इ, इज्जइ तथा *अ-कारान्त हैं। जैसे*

इ कारान्त

अघाइ[5] (अघाया जाता है)

इज्जइ कारान्त

विहरिज्जइ[6] (विहार किया जाता है)

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४४, प० २५।
२. दे० वही, पृ० ३५, प० ६०।
३. दे० वही, पृ० २५, प० ४८।
४. दे० वही, पृ० ४४, प० २२।
५. दे० वही, पृ० १०, प० ७।
६. दे० वही, पृ० ४५, प० २८।

व-कारान्त

जाव[1] (जाया जाता है)

सयुक्त क्रिया

सन्धाभाषा मे सयुक्त क्रियाओ के थोड-से रूप उपलब्ध होते हैं। जैसे :

बोल जाअ[2] (कहा जाय)
लेहु जानी[3] (जान लो)
टुटि गेलि[4] (टूट गई)
कहण सक्कइ[5] (कह सकना) इत्यादि।

पुनरुक्त सयुक्त क्रिया

सन्धाभाषा मे उपलब्ध पुनरुक्त सयुक्त क्रियाओ के कुछ उदाहरण निम्नाकित है

छाड छाड[6]
छोइ छोइ[7]
विन्धह विन्धह[8]

नामधातु

सन्धाभाषा के क्रिया रूपो म नामधातु के कुछ उदाहरण उपलब्ध होते है। जैसे

वक्खाणइ[9]
वक्खाणिज्जइ[10]

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४५, प० २६।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ४०।
३ दे० वही, च० ४७।
४ दे० वही, च० ३७।
५. दे० बागची दोहाकोश पृ० २६, प० ५२।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५०।
७ दे० वही, च० १०।
८. दे० वही, च० २८।
९ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३०, प० ६८।
१० दे० वही, पृ० १८, प० १७।

इनमे प्रथम रूप कर्त्तृवाच्य का है तथा दूसरा रूप कर्मवाच्य का प्रयुक्त है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा के क्रिया-रूपो की बनावट मे बहुत सरलता आ गई थी। इन रूपो की ह्रस्वान्त प्रवृत्ति सरलता की प्रवृत्ति का परिचायक है। सन्धाभाषा के क्रिया रूपो मे लगभग इक्यानव्वे प्रतिशत रूप ह्रस्वान्त हैं। इससे सन्धाभाषा की सरलता की प्रवृत्ति का अनुमान किया जा सकता है। निम्नांकित तालिकाओ द्वारा सन्धाभाषा की काल-रचना[1] को स्पष्ट किया जा सकता है

कर्त्तृवाच्य

सामान्य वर्त्तमान काल

	पुंलिंग एकवचन	पुंलिंग बहुवचन	स्त्रीलिंग एकवचन	स्त्रीलिंग बहुवचन
उत्तमपुरुष	जाणमि जाणहु कहवि मुतेलि	×	×	×
मध्यमपुरुष	करिअइ	एकवचन वाले रूप से भिन्न नही।	विकणअ जामि टालिउ	×
अन्यपुरुष	भवअ घोलिया उद्धलिओ घोलइ पइसी करउ कहिए वढो	विखण्डिअ मातेला छेनइ पीअउ	जागअ देक्खइ	×

पूर्ण वर्त्तमान काल

	पुंलिंग एकवचन	पुंलिंग बहुवचन	स्त्रीलिंग एकवचन	स्त्रीलिंग बहुवचन
उत्तमपुरुष	मोलिलि	×	×	×
मध्यमपुरुष	आइलेंसि	×	×	×
अन्यपुरुष	पडअ वइठा किउ लुक्को	मौलिल	लागेलि	लागेली

---

१ काल रचना की तालिकाओ मे प्रयुक्त शब्दो के प्रसगो के लिए देखिए यह ग्रन्थ (पीछे)।

सामान्य भूतकाल

	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सहाश घालिउ बुझिल	×	×	×
मध्यमपुरुष	किअउ	एकवचन के रूप से भिन्न नही।	पुंलिग रूपो स भिन्न नही।	
अन्यपुरुष	आइल आइला फिटेलि लेली	मातला पाकेला	जलिअ पोहाइ मएल पोहाइली	उह्लसिउ

सामान्य भविष्यत्काल

उत्तमपुरुष	पीवमि खाइब	×	×	×
मध्यमपुरुष	पावसि लग्गहु	एकवचन के रूपो से भिन्न नही।	पुंलिग रूपो स भिन्न नही।	
अन्यपुरुष	उइजअ लोडिब	×	पूरइ	पतिआइ(?)

कर्मवाच्य

(रूप प्राय एकवचन पुंलिंग अन्यपुरुष मे रहते है)

सामान्य वर्तमान काल

कहिअ
कहिअइ
कड्ढिउ
कहिओ
कहिज्जइ

सामान्य भूतकाल

लधिअ
पढिअउ
दीटठओ

सामान्य भविष्यत्काल

दिज्जइ

भाववाच्य

भाववाच्य के रूप प्राय सामान्य वर्त्तमान, एकवचन, पुंलिंग अन्यपुरुष में रहते हैं। अत, उनकी काल रचना नहीं दी जाती।

कृदन्त

हिन्दी मे कृदन्त शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ मे किया जाता है, पर मुख्यत वह विशेषण तथा संज्ञा के अर्थ में ही सीमित दिखाई देता है। हिन्दी के वैयाकरणों का मत है कि 'क्रिया के जिन रूपों का उपयोग दूसरे शब्द भेदो के समान होता है उन्हें कृदन्त कहते हैं।'[1] फिर भी, उन्हें यह स्वीकार करना पडता है कि क्रिया के रूप मे प्रयुक्त न होनेवाले क्रिया-रूप विशेषण संज्ञा तथा विशेषण ही होते हैं। बीम्स ने धातु से बनी हुई संज्ञाओं को ही कृदन्त माना है।[2] हिन्दी मे कृदन्त का वर्गीकरण उसके स्वरूप तथा काल के सूक्ष्म भेदो को दृष्टि मे रख कर किया गया है। इसीलिए हिन्दी मे कृदन्त के भेदो की संख्या अधिक है।

हिन्दी मे कृदन्तो का जो वर्गीकरण किया जाता है, उसके अनुसार संज्ञा की भाँति प्रयोग मे आनेवाले कृदन्त रूपों की संख्या दो है तथा विशेषण की भाँति प्रयुक्त होनेवाले कृदन्तों की संख्या छह। यों कृदन्त के कुल आठ भेद हैं जिनमे मात के रूप संथाभापा म उपलब्ध होते हैं।

संज्ञा के अर्थ में प्रयुक्त कृदन्त

संज्ञा के अर्थ मे प्रयुक्त कृदन्तो के दो भेद हैं

क्रियार्थक संज्ञा तथा

कर्तृ वाचक संज्ञा।

---

१ दे० का० प्र० गुरु हिन्दी व्याकरण, संशोधित संस्करण, काशी-नागरी प्रचारिणी सभा २० ९ वि० पृ० ३४१।

२ दे० बीम्स ए कम्पेरेटिव ग्रामर आव दि माडर्न आयन लैंग्वेजेज आव इण्डिया, वाल्यूम २, अध्याय १, पृ० २।

क्रियार्थक संज्ञा

सन्धाभाषा मे क्रियार्थक सज्ञा के निम्नांकित रूप मिलते है :

कहन्त[1] (कहना)
बसन्त[2] (बसना)
मारीह[3] (मारना)
मरिअइ[4] (मरना)
फुइण[5] (खिलना)

ये सभी रूप सदा एकवचन, पुलिंग, अन्यपुरुष मे रहते है।

कर्त्तृवाचक संज्ञा

कर्तृवाचक सज्ञा के दो रूप मिलते है :

पारगामि[6] (पार जानेवाला)
वाही[7] (खेनेवाला)

विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त कृदन्त

विशेषण की भांति प्रयोग मे आनेवाले भिन्न भिन्न कृदन्त रूपों का पुनर्वर्गीकरण काल के आधार पर किया गया है। काल की दृष्टि से कृदन्तो के जो भेद किए हैं, उनमे भूत तथा वर्तमान काल के तीन तीन रूप मिलते हैं।

वर्त्तमान कालवाले रूप

वर्तमान काल वाले कृदन्त के भेद निम्नांकित है -

वर्तमानकालिक कृदन्त,
तात्कालिक कृदन्त तथा
अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ ४२ प० १६।
२ दे० वही पृ० ३० प० ६८।
३. दे० वही, पृ० २९, प० ६५।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ८।
५. दे० वही, च० ४६।
६. दे० वही, च० ५।
७ दे० वही, च० ३८।

वर्तमानकालिक कृदन्त

वर्तमानकालिक कृदन्त के निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध हैं

चलिअ[1] (चलता हुआ)

उड्डी[2] (उड़ता हुआ)

तात्कालिक कृदन्त

तात्कालिक कृदन्त के निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं

सुनन्ते[3] (सुनते ही)

लब्भइ[4] (प्राप्त करते ही)

मिलन्त[5] (मिलते ही)

ये तीनों रूप सदा एकवचन, पुंलिंग अन्यपुरुष में रहते हैं।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के रूप सन्धाभाषा में कुछ अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। अन्ते प्रत्यय इस प्रकार के रूपों की अपनी विशेषता है। कहीं-कहीं अन्त' तथा 'अन्तो प्रत्यय भी मिलते हैं जो अन्त प्रत्यय के ही क्रमश ह्रस्व तथा दीर्घ रूप मालूम पड़ते हैं। अन्ते प्रत्यय वाले रूप निम्नांकित हैं :

अच्छन्ते[6] (रहते)

खाअन्ते[7] (खाते)

चाहन्ते[8] (चाहते)

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २७, प० ५।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३१, प० ७०।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३०।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४५, प० २६।
५ दे० वही, पृ० २१, प० ३२।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४२।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ २०, प० २४।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ४४।

पइसन्ते[1] (प्रविष्ट होते)
पढ़न्ते (हि)[2] (पढ़ते)
पिवन्ते[3] (पीते)
भरन्ते[4] (भरते)
भुञ्जन्ते[5] (भोगते)
रमन्ते[6] (घूमते)
विआरन्ते[7] (विचारते)

'अन्त' तथा 'अन्तो' प्रत्यय वाले रूप क्रमश निम्नांकित हैं

अच्छन्त[8] (रहते)
आवन्त[9] (आते)
जन्त[10] (जाते)
रमन्त[11] (घूमते)
सरन्तो[12] (चलते)
रमन्तो[13] (घूमते)

ये सभी रूप सदा एकवचन, पुंलिंग, अन्यपुरुष म रहते हैं। इस श्रेणी के रूपों मे पुनरुक्ति के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे

चाहन्तें चाहन्ते[14]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २३ और २८।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० २६, प० ५१।
३ दे० वही, पृ० २०, प० २४।
४. दे० वही।
५ दे० वही, पृ० ४४, प० २२।
६. दे० वही, पृ० २०, प० २४।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २०।
८ दे० बागची दोहाकोश पृ० २०, प० २३ और पृ० ३३ प० ८१।
९ दे० वही, पृ० ३६, प० ८१।
१० दे० वही।
११ दे० वही, पृ० २९, प० ६४।
१२ दे० वही।
१३ दे० वही।
१४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० ३१।

भूतकाल वाले रूप

भूतकाल के कृदन्त-रूपों के तीन भेद हैं भूतकालिक कृदन्त, पूर्वकालिक कृदन्त तथा पूर्णकालिक क्रियाद्योतक कृदन्त। इनमें से केवल प्रथम दो के ही रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध हैं।

भूतकालिक कृदन्त

भूतकालिक कृदन्त के निम्नांकित रूप सन्धाभाषा में मिलते हैं

उइअ[1] (उगा हुआ)
वुजिअ[2] (जाना हुआ)
जाया[3] (पैदा हुआ)
वाढा[4] (बँधा हुआ)
पडिल[5] (गिरी हुई)
दुहिल[6] (दुहा हुआ)
मानेल[7] (मत्त हुआ)
भरिति[8] (भरी हुई)

पूर्वकालिक कृदन्त

सन्धाभाषा में पूर्वकालिक कृदन्त के रूपों की संख्या सब कृदन्त-रूपों से अधिक है। इसमें ह्रस्व इ कारान्त रूप सबसे अधिक हैं। इसके अतिरिक्त अ-कारान्त, आ-कारान्त, दीर्घ ई-कारान्त, ह्रस्व उ-कारान्त तथा ए कारान्त रूप भी मिलते हैं

---

१ दे बागची दोहाकाश, पृ० १?, प० १७।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १५।
दे० वही, च० ३९।
४ दे० बागची दोहाकोष, पृ० ३५, प० ८८।
दे० वही, पृ० ६, प० ५।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३।
७ दे० वही, च १६।
८ दे० वही, च ८।

ह्रस्व इ कारान्त रूप निम्नांकित हैं

उठि[1] (उठ कर)
गइ[2] (जाकर)
घाण्टि[3] (घोट कर)
घालि[4] (घोट कर)
छड्डि[5] (छोड़ कर)
टलि[6] (हट कर)
देक्खि[7] (देख कर)
पइसि[8] (प्रवेश कर)
पसरि[9] (फैल कर)
मिलि[10] (मिल कर)
मिलि मिलि[11] (मिल मिल कर)
रचि रचि[12] (बना बना कर)
घुणि घुणि[13] (धुन धुन कर) इत्यादि।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २१।
२ दे० वही, च० ७, १५, ३१ और ४६ तथा बागची दोहाकोश, पृ० ३३, प० ८०।
३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४।
४ दे० वही।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १७, प० १३।
६. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३१।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ७।
८. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ६।
६ दे० वही, च० २३।
१० दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४५, प० २७।
११ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ८।
१२ दे० वही, च० २२।
१३ दे० वही, च० २६।

अ-कारान्त रूप निम्नांकित हैं

छाडिअ[1] (छोड कर)
णासिअ[2] (नष्ट कर)
तुडिअ[3] (तोड कर)
तोडिअ[4] (तोड कर)
पइट्ठ[5] (पैठ कर)
पुच्छिअ[6] (पूछ कर)
फाडिअ[7] (फाड कर)
भाञ्जिअ[8] (तोड कर)
मोडिअ[9] (मोड कर)
लइअ[10] (लेकर)
लाइअ[11] *(लगा कर)* इत्यादि।

आ-कारान्त रूप निम्नांकित हैं

गुणिआ[12] (गणना करके)

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १।
२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२, प० ७६।
३. दे० वही, पृ० ८०, प० ५ और पृ० ४०, प० ३०।
४. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० १६।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४१, प० ११।
६ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १।
७ दे० वही, च० ५।
८. दे० वही, च० १०।
९ दे० वही, च० १६।
१०. दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ८१, प० ६।
११. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ११।
१२. दे० वही, च० १७।

णिक्कलिया[१] (निकल कर)
तोडिआ[२] (तोड कर)
दलिआ[३] (दलन कर)
देखिआ[४] (देखकर)
लइआ[५] (लेकर)
विवाहिआ[६] (विवाह कर) इत्यादि ।

दीर्घ ई कारान्त रूप निम्नांकित हैं

उपाडी[७] (उखाड कर)
च्छाडी[८] (छोड कर)
चापी[९] (दबा कर)
चुम्बी (चूम कर)
बान्धी[११] (बाँध कर)
हेरी[१२] (देख कर) इत्यादि ।

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ४१ प० ११ ।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १२ ।
३ द० वही च० ३० ।
४ दे० वही च० ३ ।
५ दे० वही च० २८ ३५ और ५० ।
६ दे० वही च० १९ ।
७ दे० वही च० ८ ।
८ दे वही च० ६ और १५ ।
९ दे० वही च ४ और ।
१० दे वही च० ४ ।
११ द० वही च० २८ ।
१२ दे० वही च० १३ ।

उकारान्त रूप निम्नांकित हैं

तोड्डिउ[1] (तोड कर)

मोड्डिउ[1] (मोड कर)

एकारान्त पूर्वकालिक कृदन्त का सन्धाभाषा में उपलब्ध रूप है

दे[1] (देकर)

पूर्वकालिक कृदन्त के उपर्युक्त रूपों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि ये सभी रूप दोनों लिंगों और वचनों तथा तीनों पुरुषों में समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। लिंग, वचन तथा पुरुष की दृष्टि से इनमें विविधता प्रायः नहीं मिलती। इससे पता चलता है कि सन्धाभाषा में विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का आरम्भ हो गया था। यह विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति हिन्दी को विरासत के रूप में सन्धाभाषा से प्राप्त हुई।

उपसर्ग

उपसर्गों की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत तथा प्राकृत में उनके प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। सन्धाभाषा में भी उपसर्गों के पर्याप्त उदाहरण सुलभ हैं। इनके सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि इनके अधिकांश रूप संस्कृत-उपसर्गों के बहुत निकट हैं, तथापि आधुनिक हिन्दी के उपसर्गों की झलक कई रूपों में स्पष्टतः मिलने लगती है।

सन्धाभाषा के उपसर्गों को निम्नांकित आठ वर्गों में बाँटा जा सकता है :

निषेध-वाचक

आधिक्य वाचक

पश्च-सूचक

सामीप्य-सूचक

संयोग-सूचक

सम्बन्ध-सूचक

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ६।

२. दे० वही, च० ४।

३. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४, प० १२।

गुणवाचक तथा
विविध उपसर्ग ।

निषेध-वाचक उपसर्ग

सन्धाभाषा में निषेधवाचक उपसर्गों के छह रूप मिलते हैं :

अ, आ, अना, नि, णि तथा वे ।

अ

सन्धाभाषा का अ उपसर्ग अभाव या निषेध का द्योतक है। संस्कृत-उपसर्ग अ के अनुरूप है। निम्नांकित शब्दों में इसका रूप देखा जा सकता है :

अदृश्र[1]
अमण[2]
अवाम[3]

आ

सन्धाभाषा का आ उपसर्ग संस्कृत-उपसर्ग आ के निकट है। यह भी अभाव का सूचक है। जैसे,

आवाअ[4] (वाक् से पर)

अना

सन्धाभाषा का अना उपसर्ग संस्कृत अ तथा आ उपसर्गों के निकट है। यह भी अभाव का ही सूचक है। जैसे

अनावाटा[5] (रास्ता हीन)

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४, प० १२।
२. दे० वही, पृ० ३, प० ४।
३. दे० वही, पृ० ११, प० १५।
४. दे० वही, पृ० १३, प० ११।
५. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० १५।

नि

सन्धाभाषा का नि उपसर्ग संस्कृत-उपसर्गों (निर् तथा निस्) के निकट है। यह निषेध का ही द्योतक है। जैसे

निव्वोह[1]
निच्चल[2]
निभर[3]
निधिन[4] इत्यादि।

णि

सन्धाभाषा का णि उपसर्ग उसके नि उपसर्ग का ही मूर्द्धन्य रूप है। इसके कुछ रूप निम्नांकित हैं

णिचल[5] (निश्चल)
णिच्चल[6] (निश्चल)
णिरञ्जण[7] (निरंजन)
णिम्मल[8] (निर्मल) इत्यादि।

वे

सन्धाभाषा का वे उपसर्ग संस्कृत उपसर्ग वि (अभाव) के निकट है। यह भी निषेधात्मक है। जैसे

वेंग[9] (बिना अंग का)।

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ७१।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो, च० २१।
३ दे० वही, च० ५।
४ दे० वही, च० १०।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १४।
६ दे० वही, पृ० २४, प० ४३ और पृ० २५, प० ४५।
७ दे० वही, पृ० ५, प० १४।
८ दे० वही, पृ० ८, प० ३४।
९. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३३।

यह उपसर्ग हिन्दी के निकट है। कबीर में भी बिना गम के अर्थ में 'बेगम' का प्रयोग मिलता है[1], और आज तो 'बेधड़क' 'बेतार' इत्यादि प्रयोग हिन्दी में काफी प्रचलित हैं। भोजपुरी, मैथिली, मगही इत्यादि हिन्दी की पूर्वी बोलियों में भी निषेध के लिए बे या बे उपसर्ग का प्रयोग बहुत प्रचलित है।

आधिक्य-वाचक उपसर्ग

अधिकता-बोधक उपसर्गों के तीन रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध होते हैं :

परि, पड़ि तथा वि।

परि

सन्धाभाषा का परि उपसर्ग संस्कृत-उपसर्ग परि के अनुरूप है। इससे अधिकता का बोध होता है। जैसे

परिआणहु[2]
परिभावइ[3] इत्यादि।

पड़ि

सन्धाभाषा का पड़ि उपसर्ग संस्कृत के परि उपसर्ग का ही उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य रूप है। जैसे

पड़िभज्जइ[4]

वि

सन्धाभाषा का वि उपसर्ग संस्कृत-उपसर्ग वि के अनुरूप है। इससे अधिकता का बोध होता है। जैसे

विलअ[5]
विवज्जिअ[6]

---

१. दे० द्विवेदी, ह० प्र० कबीर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९४७, पृ० २८० : अवधू बेगम देम हमारा।
२ दे० बागची . दोहाकोश, पृ० ३८, प० १०४।
३ दे० वही, पृ० ३८, प० १०५।
४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३६, प० १०९।
५. दे० वही, पृ० २१, प० २९ और पृ० २३, प० ३६।
६. दे० वही, पृ० २६, प० ५४।

विमुद्ध[1]

विप्फुरइ[2] इत्यादि।

वि उपसर्ग सन्धाभाषा मे अभाव के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे .

विमन[3] (बिना मन के, अन्यमनस्क)।

पश्च-सूचक उपसर्ग[4]

'पीछे' अर्थवाले दो उपसर्ग सन्धाभाषा मे मिलते हैं

अनु तथा अणु।

अनु

सन्धाभाषा का अनु उपसर्ग संस्कृत उपसर्ग अनु के अनुरूप है। इससे पीछे तथा समान के अर्थों का बोध होता है। जैसे

अनुदिन[4]

अणु

सन्धाभाषा का अणु उपसर्ग संस्कृत के अनु उपसर्ग का ही मूर्द्धन्य रूप है। जैसे

अणुदिण[5]।

सामीप्य-सूचक उपसर्ग

सन्धाभाषा मे निकट' तथा 'सदृश' अर्थवाला एक उपसर्ग उपलब्ध होता है उप।

उप

सन्धाभाषा का उप उपसर्ग संस्कृत उप उपसर्ग के ही अनुरूप है। इससे निकटता तथा सादृश्य का बोध होता है। जैसे

उपपीठ[6]

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० ३१, प० ७०।

२. दे० वही, पृ० ३१, प० ७२।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ७।

४ दे० वही, च० ४२।

५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४५, प० २६।

६. दे० वही, पृ० २५, प० ४८।

संयोग-सूचक उपसर्ग

'सहित' अर्थवाला एक उपसर्ग सन्धाभाषा में मिलता है स।

स

सन्धाभाषा का स उपसर्ग संस्कृत के स उपसर्ग के अनुरूप है। इससे सहित के अर्थ का बोध होता है। जैसे

सइच्छ[1]

सम्बन्ध सूचक उपसर्ग

सन्धाभाषा में दो सम्बन्ध सूचक उपसर्ग मिलते हैं सअ तथा पर।

सअ

सन्धाभाषा का सअ उपसर्ग संस्कृत उपसर्ग स्व के निकट है। इससे अपनेपन का बोध होता है। जैसे

सअसम्बेअण[2]

पर

सन्धाभाषा के पर उपसर्ग से दूसर का बोध होता है। जैसे

परवस[3]

गुणवाचक उपसर्ग

गुणवाचक उपसर्गों के चार रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध हैं कु, सु, सउ तथा दु।

कु

सन्धाभाषा का कु उपसर्ग संस्कृत उपसर्ग कु के अनुरूप है। इससे बुरे अर्थ का बोध होता है। जैसे

कुदिट्ठि[4] (बुरी दृष्टि)

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३७ प० १००।

२ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १५ और २६।

३ दे० वही च० ३१।

४ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३७, प० ९९।

।

सन्धाभाषा का सु उपसर्ग संस्कृत-उपसर्ग सु के अनुरूप है। इससे अच्छे अर्थ का बोध होता है। जैसे :

सुगति[1]

कहीं-कहा सु उपसर्ग से अधिकता का भी बोध होता है। जैसे :

सुचञ्चल[2] (बहुत चचल)

सद् तथा सद

सन्धाभाषा का सद् तथा सद उपसर्ग संस्कृत-उपसर्ग सन् के अनुरूप है। इससे भी अच्छे के अर्थ का बोध होता है। जैसे :

सद्गुरु[3]

सदभावे[4]

दु

सन्धाभाषा का दु उपसर्ग संस्कृत के दुर तथा दुस् उपसर्गों के निकट है। इससे बुरे तथा कठिन इन दोनों अर्थों का बोध होता है। जैसे

दुज्जण[5] (बुरा मनुष्य)

दुलक्ख[6] (कठिनाई से दिखाई देनेवाला)

विविध उपसर्ग

उपर्युक्त कोटियों म नहीं आ सकनेवाले उपसर्ग 'विविध' की कोटि मे आते हैं। सन्धाभाषा के 'सम' उपसर्ग को इस कोटि मे रखा जा सकता है।

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २१, प० ३२।

२. दे० वही, पृ० २५, प० ४५।

३. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ८, १२ और १४।

४. दे० वही, च० १०।

५. दे० वही, च० ३२।

६ दे० वही, च० २६।

सम

सम उपसर्ग से बराबर तथा पूर्णता का बोध होता है। जैसे

समरस[1]

सन्धाभाषा के उपसर्गों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्धा-भाषा की प्रवृत्ति सश्लेषणात्मक से विश्लेषणात्मक हो रही थी तथा वह भाषा क्रमशः हिन्दी की ओर बढ़ रही थी, जिससे अन्ततः हिन्दी का आविर्भाव हुआ।

परसर्ग

उपसर्गों की भाँति परसर्गों की परम्परा भी संस्कृत तथा प्राकृत में मिलती है। परसर्गों को हिन्दी में प्रत्यय भी कहा जाता है। सन्धाभाषा में प्रत्ययों का व्यवहार प्रचुर मात्रा में हुआ है। कारक रूपों में जो विभक्तियाँ जुड़ी रहती हैं, वे परसर्ग की सीमा में ही आती हैं। पुंलिंग से स्त्रीलिंग तथा एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए जो विभक्तियाँ काम में लाई जाती हैं, वे भी परसर्ग ही हैं, पर चूँकि उनका विवेचन यथास्थान संज्ञा रूपों के प्रकरण में हो चुका है[1] इसलिए उनके अतिरिक्त जो अन्य परसर्ग सन्धाभाषा में प्रयुक्त हुए हैं, केवल उन्हीं का विवेचन यहाँ किया जाएगा। सन्धाभाषा के परसर्गों को सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:

कर्तृ वाचक, अवधारण-सूचक, सम्बन्ध-सूचक, भाववाचक, आदर सूचक, निरर्थक प्रत्यय तथा विविध प्रत्यय।

कर्तृवाचक परसर्ग

संख्या की दृष्टि से प्रथम स्थान कर्तृवाचक परसर्गों का है। इनके चार रूप सन्धाभाषा में उपलब्ध हैं, जो निम्नांकित हैं:

क, गामि या गामी, धारी तथा वाहा या वाही।

क

सन्धाभाषा का क प्रत्यय संस्कृत के 'कर' प्रत्यय के निकट है। इससे करनेवाले का बोध होता है। जैसे:

नाटक[2] (नृत्य करनेवाला)

---

१ दे० यह ग्रन्थ (पीछे)।

२. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० १७।

गामि या गामी

मन्धाभाषा का गामि या गामी प्रत्यय गमन करनेवाले का बोध करता है। जैसे :

पारगामि[1]

पारगामी[2]

धारी

मन्धाभाषा का धारी प्रत्यय संस्कृत के धर या धार प्रत्ययों के निकट है। इससे धारण करनेवाले का बोध होता है। जैसे :

वज्रधारी[3]

वाहा या वाही

मन्धाभाषा का वाहा या वाही प्रत्यय वहन करनेवाले के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे

फल वाहा[4] (फल वहन करनेवाला)

नौ वाही[5] (नौका-वहन या संचालन करनेवाला)

अवधारण सूचक परसर्ग

अवधारण वाले परसर्गों की संख्या मन्धाभाषा में चार ही है

ए, वि, हि तथा हा

ए

अवधारण के लिए सन्धाभाषा में ए प्रत्यय का व्यवहार हुआ है : जैसे :

तक्खणे[6] (उस क्षण ही)

---

१. दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० ५।

२. दे० वही, च० ५।

३. दे० वही, च० २८।

४. दे० वही, च० ४५।

५. दे० वही, च० ३८।

६. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ४३, प० १६।

वि

सन्धाभाषा का वि प्रत्यय संस्कृत के अपि प्रत्यय का रूप है। इसका प्रयोग भी अवधारण के लिए किया गया है। जैसे

सोवि[1]

वेण्णवि[2]

कोवि[3]

पञ्चवि[4]

हि

सन्धाभाषा मे हि प्रत्यय अवधारण के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जैसे

सअलहि[5]

ही

सन्धाभाषा मे ही प्रत्यय से अवधारण का बोध होता है। जैसे

पवणही[6]।

उपर्युक्त 'हि प्रत्यय मे हिन्दी के ही' प्रत्यय का आदि रूप स्पष्ट दिखा पडता है।

सम्बन्ध सूचक परसर्ग[6]

सन्धाभाषा मे सम्बन्ध सूचक परसर्गों की सख्या तीन है भर, कर त टाकलि। इनका प्रयोग सम्बन्ध सूचित करने के लिए ही किया गया है। जैसे

रातिभर[7]

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ७ प० २७।

२ दे० वही, पृ० १०, प० ८।

३ वही, पृ० १३ प० ७।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० औ दो०, दो० ९ ५

५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १९, प० २२।

६ दे० वही, पृ० २१, प० ३०-३१।

७ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, प० २७।

दिढकर[1] (दृढता के साथ)

गअणटाकलि[2] (गगन तक)।

भाव-वाचक परसर्ग

सन्धाभाषा मे एक भाववाचक परसर्ग मिलता है . ता । इसके संयोग से भाववाचक सज्ञाओ की सृष्टि होती है। जैसे :

सयता[3]

ममता[4]

आदर-सूचक परसर्ग

आदर सूचित करने के लिए सन्धाभाषा मे वर प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। जैस

गअवर[5]

निरर्थक परसर्ग

कुछ निरर्थक परसर्ग भी सन्धाभाषा म प्राप्त होते हैं। जैस

अ, ज, ठि या ठो।

अ

परसर्ग के रूप मे अ की कोई सार्थकता दिखाई नहो पडती। सम्भव है, मात्रा तथा लय के लिए इसका व्यवहार सिद्धो द्वारा सन्धाभाषा म किया गया होगा। निम्नाकित उदाहरणो मे अ प्रत्यय का रूप देखा जा सकता है :

सरिसअ[6]

बाहेरिअ[7]

---

१. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ६, प० २३।
२. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १९।
३. वही, च० ६।
४. वही, च० ४७।
५. वही, च० १७।
६. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २५, प० ४८।
७. दे० वही, पृ० ४०, प० २।

जे

अ परसग की भाँति ज परसग का व्यवहार भी सन्धाभाषा म निरर्थक रूप मे हुआ है । जैसे

विचिन्तजे[1]

सुरत्तजे[2]

विमत्तजे[3]

परमत्था[4]

ठि या ठी

बँगला बोली मे निरथक टि, टा इत्यादि प्रत्ययो का व्यवहार प्राय होता है । सन्धाभाषा मे निरथक ठि या ठी परसग का प्रयाग बँगला प्रभाव का परिचायक है। निम्नाकित शब्दो मे इस परसग का प्रयोग दखा जा सकता है -

चौषठठी[5]

चउषठठि[6]

विविध परसर्ग

उपर्युक्त कोटियो मे नहीं आ सकने वाले परसग विविध परसग की कोटि मे रखे जाते है । सन्धाभाषा के निम्नाकित परसग इस कोटि मे आते हैं

आली तथा उर या उरा

आली

सन्धाभाषा का आली प्रत्यय वग शब्द के साथ जुड कर उस प्रदेश क वासी का अथ सूचित करता है । जैसे

बगाली[7] (बग का वासी)

---

१ दे० बागची दोहाकोश पृ० २८, प० ६१ ।

२ दे० वही ।

३ दे० वही ।

४ दे० वही ।

५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० १० ।

६ दे० वही, च० १२ ।

७ दे० वही, च० ४९ ।

उर या उरा

सन्धाभाषा के उर या उरा प्रत्यय देश के अर्थ के द्योतक हैं। जैसे,

जिनउर[1] (जिनपुर)

जिनउरा[2] (जिनपुर)

ग्राम के लिए हिन्दी पुर प्रत्यय का आदि रूप सन्धाभाषा के उर प्रत्यय में स्पष्ट लक्षित होता है।

सन्धाभाषा के उपसर्ग तथा परसर्ग दोनों इस बात के प्रमाण हैं कि सन्धाभाषा में आदि हिन्दी का रूप धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा था और अन्ततः उन रूपों से आधुनिक हिन्दी का विकास हुआ। बँगला में प्रभावित टाकलि प्रत्यय इस बात का प्रमाण उपस्थित करता है कि सन्धाभाषा पूर्वी प्रदेश में ही रची गई।

---

१. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ७।

२. दे० वही, च० १८।

तृतीय खण्ड

वाक्य-विचार

सन्धाभाषा की वाक्य रचना

सन्धाभाषा म गद्य का नमूना उपलब्ध नही है। अत पद्यात्मक होने के कारण उसकी वाक्य रचना को गद्यात्मक साहित्य के मापदण्ड मे नही मापा जा सकता[1] फिर भी विवेचन की सुविधा के लिए, निम्नाकित चार दृष्टियो से हम उस पर विचार करेंगे

(क) वाक्यो के वाच्य

(ख) कर्त्ता कम तथा क्रिया का अन्वय

(ग) पद क्रम तथा

(घ) कत्तृ पद या क्रियादि का लोप।

वाच्य

स धाभाषा की वाक्य रचना म कर्तृ वाच्य कमवाच्य तथा भाववाच्य इन तीनो के रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमे कर्तृ वाच्य के वाक्यो की सख्या सर्वाधिक है। दूसरा स्थान कमवाच्य के वाक्यो का है। सन्धाभाषा म ये भी प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। सबसे कम सख्या भाववाच्य के वाक्यो की है। सन्धाभाषा से इन तीनो प्रकार के वाक्यो के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं

कर्तृ वाच्य

पर अप्पाण म भन्ति करु सअल णिरन्तर बुद्ध।[2]

(दूसरे और अपने मे भेद मत करो सभी चिरन्तन बुद्ध हैं।)

---

१ मिला० Kellogg, S H Grammar of the Hindi Language, पृ० ४०१

"It is important to observe, however, that in Hindi poetry the laws of grammar often yield to the necessities of the measure Even agreement in gender and number is often sacrificed to the exigencies of the metre "

२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १३।

जहि मण पवण ण सञ्चरइ रवि ससि णाह पवेस ।[1]

(जहाँ मन तथा पवन नही जा सकते हैं, रवि तथा शशि का प्रवेश नहीं है।)

दसमि दुआरत चिन्ह देखिआ।
आइल गराहक अपणे वहिआ।[2]

(दसवें द्वार पर चिह्न देखकर ग्राहक अपने ही आप बहता हुआ आया।)

छोइ छोइ जाइ सो वाम्हनाडिआ।[3]

(ब्राह्मण का पुत्र उसे छू छू कर जाता है।)

कर्मवाच्य

अन्धें अन्ध कढावइ,...[4]

(अन्ध के द्वारा अन्धा निकाला जाता है ......।)

सरहे कहिअ उएस।[5]

(सरह के द्वारा उपदेश कहा जाता है।)

घरवइ खज्जइ घरिणिएहि ....।[6]

(गृहपति गृहिणी के द्वारा खाया जाता है।)

भाववाच्य

णउ परि सुणिअइ महासुह ठाणा।[7]

(महासुख का स्थान नही सुनाई पड़ता है।)

कर्त्ता तथा क्रिया का अन्वय

हिन्दी-व्याकरण के अनुसार वाक्य मे जब मुख्य कर्त्ता कारक उद्देश्य रहता है, तब क्रिया के लिंग, वचन तथा पुरुष उसी के लिंग, वचन तथा

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० २०, प० २० ।
२ दे० शास्त्री बौ० गा० ओ दो०, च० ३ ।
३ दे० वही, च० १० ।
४. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १०, प० ।
५ दे० वही, पृ० २०, प० २१ ।
६ दे० वही, पृ० ३४, प० ८४ ।
७. दे० वही, पृ० ३२, प० ७८ ।

पुरुष के अनुसार होते हैं।[1] सन्धाभाषा में कर्त्ता और क्रिया की यह अन्विति कई स्थलों पर स्पष्ट दिखाई देती है।

पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख ....[2]

(पूँछ ग्रहण करने से यदि मोक्ष दिखाई पड़ता............)

मोक्ख—(कर्त्ता) के एकवचन, पुलिंग, अन्यपुरुष में होने के कारण दिट्ठ (क्रिया) भी एकवचन पुलिंग, अन्यपुरुष में है।

नाना तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली।[3]

यहाँ पुंलिंग कर्त्ता 'तरुअर' के साथ पुलिंग क्रिया 'मौलिल' का प्रयोग है तथा स्त्रीलिंग कर्त्ता डाली के साथ स्त्रीलिंग क्रिया लागेलि का प्रयोग हुआ है।

आइससि जासि डोम्बि कहरि नावें।[4]

(डोम्बि, तुम किस नौका से आती जाती हो ?)

यहाँ स्त्रीलिंग, एकवचन, मध्यमपुरुष, कर्त्ता डोम्बि के साथ आइससि जासि स्त्रीलिंग, एकवचन, मध्यमपुरुष क्रियाओं का व्यवहार हुआ है।

कर्त्ता और क्रिया की अन्विति का एक और उदाहरण सन्धाभाषा में मिलता है। हिन्दी व्याकरण के अनुसार भिन्न भिन्न लिंगों की अनेक प्राणि-वाचक संज्ञाएँ जब एकवचन में रहती है, तब क्रिया बहुधा पुलिंग, एकवचन में होती है।[5] निम्नांकित उदाहरणों में इस नियम का पालन हुआ है।

मणह भअवा खसम भअवइ

दिवाराति सहजे राहिअइ।[6]

भअवा तथा भअवइ दो भिन्न लिंगों की संज्ञाओं के साथ पुलिंग बहुवचन क्रिया राहिअइ का प्रयोग हुआ है।

---

१. दे० गुरु, का० प्र० हिन्दी-व्याकरण, पृ० ५४१।

२. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १६, प० ८।

३ दे० शास्त्री : बौ० गा० ओ दो०, च० २८।

४. दे० वही, च० १०।

५ दे० गुरु, का० प्र० हिन्दी-व्याकरण, पृ० ५५४।

६. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० ५, प० १७।

कञ्चुविना पाकेला रे शवरा शवरि मातेला ।[१]

शवरा' और शवरि' दो भिन्न लिंगो की एकवचन सज्ञाओ के साथ पु लिंग, बहुवचन क्रिया मातेला' का व्यवहार हुआ है ।

सन्धाभाषा मे हिन्दी की भाँति, जहाँ कर्त्ता और क्रिया की अन्विति के कुछ उदाहरण उपलब्ध होते है, वहाँ हिन्दी के प्रतिकूल आदर-सूचक तथा मुहावरेदार बहुवचनो के रूप उसमे नही मिलते । हिन्दी मे आदर के लिए एकवचन कर्त्ता के साथ बहुवचन क्रिया का प्रयोग होता है । परन्तु, सन्धाभाषा मे इस प्रकार के आदरसूचक बहुवचन के रूप नही मिलते । दशन प्राण इत्यादि एकवचन कर्त्ता के साथ भी बहुवचन की क्रियाओ का प्रयोग हिन्दी मे होता है पर सन्धाभाषा मे इस प्रकार के मुहावरेदार बहुवचनो[३] के रूप नही मिलते ।

कर्म कारक वाली सज्ञाओ तथा उनके साथ प्रयुक्त क्रियाओ के लिंगो तथा वचनो मे एकरूपता नही रहने के कारण कर्म और क्रिया के अन्वय वाले स्पष्ट उदाहरण सन्धाभाषा मे नही मिलते ।

पद क्रम

व्याकरण के नियमो के अनुसार वाक्य मे पदो का जो क्रम रहता है, उसमे अवधारण या कुछ विशेष प्रसगो के कारण अन्तर पड जाता है । इस प्रकार के पद क्रम को आलकारिक पद क्रम कहा जाता है ।[४] इसके विपरीत दूसरे पद क्रम को साधारण या व्याकरणीय पद क्रम कहा जाता है ।[४] सन्धाभाषा मे पद क्रम के उपयुक्त दोनो रूप उपलब्ध होते है ।[५] उनका विवेचन आगे दिया जाता है ।

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ५० ।
२ दे० Kellogg Grammar of the Hindi Language, पृ० ३९५ 'Plural of Respect
३ दे० वही Idiomatic Plural
४ दे० गुरु हिन्दी व्याकरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००९ वि० पृ० ६०९ ।
५ दे० वही ।

साधारण पद-क्रम

यद्यपि छन्द की सगति तथा अवधारण के लिए प्रयुक्त आलकारिक पद-क्रम के रूप सन्धाभाषा मे प्रचुर मात्रा म मिलत हैं, तथापि उसमे हिन्दी की भाँति, साधारण पद क्रम के उदाहरण कम नही मिलते। हिन्दी-व्याकरण के अनुसार वाक्य मे पहले कर्त्ता रखा जाता है तब कम, तथा अन्त मे क्रिया रखी जाती है।[1] सन्धाभाषा मे ऐसे स्थल बहुत मिलते हैं, जहाँ इस सामान्य नियम का पालन पूर्णरूपेण हुआ है। उनमे कुछ उदाहरण निम्नाकित हैं -

सहजें भावाभाव पुच्छह।[2]

(सहज भावाभाव नही पूछना है।)

आलिए कालिए बाट रून्धला।[3]

(आलि और काति बाट अवरुद्ध करते हैं।)

हिन्दी-व्याकरण के अनुसार विशेषण सज्ञा के पहले आता है।[4] सन्धाभाषा मे इस प्रकार के प्रयोग उपलब्ध होते है। जैसे -

पक्क सिरिफल अलिअ जिम वाहेरिअ भमन्ति।[5]

(पके श्रीफल पर भौंरे जैसे बाहर ही भ्रमण करते है।)

जइ पवण गमण दुआरे दिढ ताला वि दिज्जइ।[6]

(यदि वायु जाने के द्वार पर दृढ ताला दिया जाय।)

तथा

चञ्चल मुसा कलिआँ नाशक थाती।[7]

(चचल चूहा नाश का घर है।) इत्यादि।

---

१ दे० गुरु हिन्दी व्याकरण, ना० प्र० सभा, काशी, स० २००९ वि०, पृ० ६०६।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० २।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ७।
४ दे० गुरु, का० प्र०, हिन्दी-व्याकरण, पृ० ६१०।
५ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ४० प० २।
६ दे० वही, पृ० ४४, प० २२।
७. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २१।

हिन्दी मे साधारण पद-क्रम के अनुसार सम्बोधन तथा विस्मयादि-बोधक शब्द वाक्य के आरम्भ मे आते हैं।[1] सन्धाभाषा मे इस नियम का पालन हुआ है। जैसे

अरे बढ लोअ म करह रे भिण्णा।[2]

तथा

जोइनि तइ विनु खनहि न जीवमि।[3] इत्यादि।

हिन्दी के साधारण पद क्रम के अनुसार सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' तथा 'सो' वाक्यो के आरम्भ मे आते हैं।[4] सन्धाभाषा मे इस पद-क्रम के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे

जो एथु बुझइ सो एथु वीरा।[5]

(जो इसको समझेगा वह वीर है।)

साधारण पद क्रम के अनुसार हिन्दी मे निषेधवाचक शब्द, क्रियाओ के ठीक पूर्व रखे जाते है।[6] सन्धाभाषा मे भी इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे

असण सिआर म दूसह मिच्छे।[7]

तथा

वोहिसत्व म करहु सेवा।[8]

आलंकारिक पद-क्रम

साधारण पद क्रम के अनुसार वाक्य म कर्त्ता के बाद कर्म रखा जाता है।

---

१ दे० गुरु हिन्दी-व्याकरण, पृ० ६१३।
२ दे० बागची दोहाकोश पृ० ११, प० १६।
३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ४।
४ दे० गुरु हिन्दी-व्याकरण पृ० ६११।
५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २०।
६ दे० गुरु हिन्दी-व्याकरण, पृ० ६१२।
७ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ४।
८ दे० वही, पृ० ६, प० २०।

सन्धाभाषा के निम्नांकित उदाहरणों मे कर्त्ता और कर्म के स्थानों का विनिमय हो गया है :

> रुखेर तेंतालि कुम्भीरे खाअ ।[१]
> (वृक्ष की इमली कुम्भीर खाता है ।)
> तिन न च्छुपइ हरिणा पिवइ न पानी ।[२]
> (तृण हरिण नहीं छूता है और न पानी पीता है ।)

यहाँ कुम्भीरे तथा हरिणा कर्त्ता क्रमश तेंतलि तथा तिन कर्मों के बाद प्रयुक्त हुए हैं।

साधारण पद क्रम के प्रतिकूल सन्धाभाषा के कुछ वाक्यों में कर्त्ता और कर्म के पहले ही क्रिया रखी गई है । जैसे,

> मारह चित्त णिव्वाणें हणिआ ।[३]
> (मारो चित्त को निर्वाण के द्वारा हनन करके ।)
> भणइ मरह रि यह विसमी रन्धा ।[४]
> (कहता है मरह रि यह विषम रन्ध्र है ।)
> आइल गराहक अपण वहिआ ।[५]
> (आया ग्राहक ......)

आइल क्रिया मे पूर्वी (भोजपुरी) भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।

संयुक्त क्रियाओं के खण्डों को एक साथ संयुक्त न रख कर अलग-अलग कर देने के कुछ उदाहरण भी सन्धाभाषा में मिलते हैं । जैसे

> वाजुत्ते दिल मो लक्ख भणिआ ।[६]

---

१ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २ ।
२ दे० वही, च० ६ ।
३ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ३ ।
४ दे० वही, पृ० ११, प० १४ ।
५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ३ ।
६ दे० वही, च० ३५ ।

यहाँ भणिआ दिल संयुक्त क्रिया के दोनों खण्डों को अलग कर दिया गया है।

साधारण पद-क्रम के विपरीत सन्धाभाषा के निम्नांकित स्थलों में सम्बोधन तथा विस्मयादिबोधक शब्द वाक्य के मध्य तथा अन्त में आए हैं :

> सव्वहि रे वड विब्भम कारण।[1]
>
> जइ तुम्हे लोअ हे जाइब पारगामी।[2]
>
> अग्गिन घरपण गुन भो विआली।[3]

लोअ हे रूप में सम्बोधन-वाचक शब्द वाक्य के बीच में तो आया ही है, छन्द की संगति के लिए हे तथा लोअ शब्दों में भी परस्पर स्थान का विनिमय हो गया है।

साधारण पद-क्रम के विपरीत सन्धाभाषा के निम्नांकित उदाहरण में 'सो' का समानार्थी 'सोइ' शब्द वाक्य के अन्त में रखा गया है :

> जे जे उजू वाटे गेला अनावाटा भइला सोइ।[4]

यहाँ उल्लेखनीय है कि यद्यपि जो का समानार्थी शब्द 'जे' वाक्य के आरम्भ में आया है, तथापि छन्द की संगति के लिए 'सोइ' शब्द अन्त में रखा गया है।

साधारण पद-क्रम के विपरीत सन्धाभाषा के कुछ निषेधवाचक शब्द अपनी क्रियाओं के ठीक पूर्व नहीं रखे गए हैं। जैसे :

> सुह अच्छन्त म अप्पणु झगडहु।[5]
>
> मा भवगन्य बन्ध पडिच्चज्जहु।[6]
>
> उठेम्बि ण कोवि ण दीसइ।[7]

---

१ दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २०, प० २३।
२. दे० शास्त्री : बौ० गा० दो०, च० ५।
३ दे० वही, च० २।
४. दे० वही, च० १५।
५. दे० बागची : दोहाकोश, पृ० २०, प० २३।
६. दे० वही, पृ० २४, प० ४४।
७. दे० वही, पृ० १३, प० ७।

कर्तृपद तथा क्रियापद आदि का लोप

सन्धाभाषा के बहुत से वाक्यो मे कर्तृपद तथा क्रियापद लुप्त रहते हैं। केवल अर्थ से ही उनके अस्तित्व का बोध होता है। जैसे

मारहु चित्त णिव्वाणें हणिआ।[1]
अमण सिआर म दूसहु मिच्छे।[2]
बुद्ध आराहहु अविकल चित्तें।[3]

इन सभी उदाहरणो कर्तृपद 'तुम' लुप्त है। क्रियापद से उसका आभास सुगमता से हो जाता है।

सन्धाभाषा के निम्नांकित वाक्यो मे यद्यपि क्रियापद लुप्त हैं, तथापि अर्थ से उनकी स्थिति का अनुमान हो जाता है

काआ तरुवर पञ्च वि डाल।[4]

यहाँ है अथवा हैं—वाचक क्रियापदो का प्रयोग नही हुआ है। वे यहाँ शेष हैं।

हँउ जगु, हँउ बुद्ध हँउ णिरञ्जण।[5]

यहाँ हूँ-वाचक क्रियापद शेष है।

कही-कही यदि वाचक शब्दो के साथ प्रयुक्त होनेवाले तो वाचक शब्दो के लोप के उदाहरण सन्धाभाषा मे उपलब्ध होते हैं। हिन्दी-व्याकरण के नियम के अनुसार यदि तथा तो दो भिन्न वाक्यो के आरम्भ मे आकर उन्हें परस्पर जोडते हैं। इसलिए, सयुक्त वाक्यो मे साधारणत यदि तथा तो दोनो की स्थिति रहनी चाहिए। सन्धाभाषा मे ऐसे प्रयोग उपलब्ध होते हैं, जहाँ यदि-वाचक शब्द के वर्त्तमान रहने पर भी तो-वाचक शब्द अपने स्थान से लुप्त रहता है। जैसे

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० ३।
२ दे० वही, पृ० ३, प० ४।
३ दे० वही, पृ० ६, प० २२।
४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १।
५. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ५, प० १६।

जइ तुम्हे भुसुकु अहेरि जाइब मारिहसि पञ्चजणा ।[१]
जइ तो मूढ़ा अच्छसि भान्ति पुच्छतु सद्गुरु पावा ।[२]

इन दोनों ही प्रसगो मे संयोजक तो-वाचक पदो का लोप है। द्वितीय उदाहरण मे प्रयुक्त तो शब्द का अर्थ है तुमको। वह सम्प्रदान कारक का रूप है, सयोजक 'तो' का बोधक नही।

---

१ द० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २३।
२. दे० वही, च० ४१।

चतुर्थ खण्ड

अर्थ-विचार

सन्धाभषा की अर्थगत विशेषता

सन्धाभाषा का साहित्य दोहों तथा चर्यागीतों में मिलता है। दोहों में अध्यात्म सम्बन्धी अनुभवों की चर्चा की गई है तथा सहज-पन्थ का स्वरूप बतलाया गया है। अत, इस सम्प्रदाय के साधक को सिद्धि प्राप्त करने के लिए जिन-जिन अवस्थाओं से होकर चलना पड़ता है, उन सारी अवस्थाओं का परिचय दोहों में कराया गया है। सहज सम्प्रदाय की भिन्न भिन्न आध्यात्मिक क्रियाओं की व्याख्या भी यथासम्भव दोहों म की गई है। कुछ दोहे नीति के उपदेशों से भी सम्बद्ध हैं। अत, विवरणात्मक होने के कारण दोहों को समझने मे अधिक कठिनाई नहीं होती।

सन्धाभाषा के दोहों मे 'सहज' का बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है। उसके स्वरूप के साथ ही उसकी महत्ता बतलाने का यथेष्ट प्रयास दोहों में किया गया है। 'सहज' सिद्धों का परमतत्त्व है। अतः, परमतत्त्व या परमेश्वर के रूप की पूरी चर्चा दोहों मे मिलती है। सिद्धों का यह परमतत्त्व 'सहज' के ही समकक्ष माना गया है।

बौद्धों के महासुख की भावना को जिस रूप मे सिद्धों ने अपनाया है, उसकी चर्चा दोहों में पर्याप्त रूप से मिलती है। सिद्धों के सम्प्रदाय में शून्यता तथा करुणा के संयोग से महासुख की उपलब्धि मानी गई है, अत इन दोनों उपकरणों का विस्तृत विवेचन दोहों मे मिलता है।

धर्म के विकृत तथा खण्डित रूप को छोड़ कर समग्रता की भावना सिद्धों ने अपनाई है। वे मनुष्य-मनुष्य मे कोई अन्तर नहीं रखना चाहते। अत, समग्रता की भावना तथा लोक-कल्याण की पूरी चर्चा उनके दोहों मे मिलती है।

तीर्थों, मन्दिरों तथा मूर्तियों की व्यर्थता के सम्बन्ध में भी सिद्धों ने अपना स्वर ऊंचा किया है। अत, काया तीर्थ के सिद्धान्त का प्रतिपादन दोहों मे मिलता है। कठोर साधना के बदले सिद्धों ने सहज-साधना पर जोर दिया है। अत, सहज-साधना का उल्लेख भी दोहों मे उपलब्ध होता है।

सिद्धों की दृष्टि मे गुरु के बिना साधना का कोई महत्त्व नहीं। बिना गुरु के सहज साधना का वास्तविक ज्ञान किसी को नहीं हो सकता। पथ-भ्रष्ट जगत् के लिए गुरु-उपदेश-रूपी अमृत का पान अनिवार्य है। अत, गुरु महिमा की पूरी विवेचना दोहों मे मिलती है। गुरु ही माया के पाश स

जीव को मुक्ति दिला सकता है। अतः, माया के भ्रामक रूप का भी बड़ा सजीव चित्र दोहों में मिलता है।

चर्यागीतों में दैनिक चर्या का स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से मिलता है। उसमें साधक अपनी दिनचर्या बतलाता है तथा भ्रान्त जगत् की दिनचर्या का भी उल्लेख करता है। इस प्रकार, अपने जीवन का उदाहरण सामने रखते हुए वह जगत् के प्राणियों को मुक्ति का मार्ग बतलाता है।

चूँकि साधक की चर्या बहुत कुछ गोपनीय रहती थी, इसलिए चर्यागीतों में द्व्यर्थक प्रसंगों की प्रधानता है। साधना की बातें अयोग्य शिष्य के हाथों में न पड़ सकें, इसके लिए सिद्धों ने उलटबांसी की शैली का उपयोग किया है। चर्यागीतों में उलटबाँसियों की बहुलता है।

उलटबाँसियों के कारण सन्ध्याभाषा की शैली बहुत प्रभाव-पूर्ण हो गई है। अन्य प्रसंगों में भी सिद्धों ने बड़ी सफलता के साथ अपनी बातें समझाई हैं। इसके लिए रूपकों तथा उपमानों का जितना सुन्दर प्रयोग किया गया है वह किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है।

धर्म का वास्तविक रूप समझाने के प्रयास के कारण सन्ध्याभाषा में रहस्यवाद का समावेश स्वाभाविक रूप से हो गया है। यह रहस्यवाद परम्परागत रहस्यवाद की भावना के अनुरूप है, जिसमें साधक परमात्मा की सत्ता का अनुभव करता है परन्तु उसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाता। सिद्धों का दार्शनिक पक्ष भी परम्परागत ही कहा जा सकता है। वेदों उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा एक माने जाते हैं, उसी प्रकार सन्ध्याभाषा में आत्मा परमात्मा का प्रतिरूप मानी जाती है। जिस प्रकार अन्य धार्मिक ग्रन्थों में ब्रह्म जगत् के कण कण में व्याप्त माना गया है, उसी प्रकार सन्ध्याभाषा में ब्रह्म प्रत्येक वस्तु में विद्यमान माना गया है। उस सहज (ब्रह्म) को आँखों से देखा नहीं जा सकता, परन्तु उसकी अनुभूति की जा सकती है।

साधना के क्षेत्र में सिद्ध बौद्धों की परवर्ती शाखाओं (महायान इत्यादि) से कुछ भिन्न हैं। मन्त्रयान तथा वज्रयान में प्रचलित अनैतिकता की भावना का इन्होंने स्पष्ट रूप से विरोध किया है। इसके विपरीत सिद्धों की भावना सहज-साधना है, जिसमें घर-द्वार छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।[1] अतः,

[1] यही साधना कबीर के साहित्य में पुनः प्रकट होती है।

सहज साधना के माध्यम से जगत के प्राणियो के प्रति करुणा की भावना रखना ही सिद्धो की साधना का प्रधान लक्ष्य है। परन्तु, सिद्धो की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने अपने पूर्ववर्ती सभी सम्प्रदायो के सिद्धान्त का समन्वय उपस्थित किया किया है। वेदो तथा उपनिषदो के अद्वैतवाद से लेकर वज्रयानियो के हठयोग तक की परम्पराओ का उन्होने बडा सुन्दर समन्वय स्थापित किया है तथा लोक-जीवन की सुविधा के अनुकूल मध्यम मार्ग के सिद्धान्त का निरूपण किया है। यही कारण है कि उनकी साधना मे प्रत्येक सम्प्रदाय की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं तथा समाज के प्रत्येक वर्ग के ज्ञान पिपासु उसमे अपनी जिज्ञासा की शान्ति पा सके हैं।

सिद्धो की साधना परम्परागत विचारो का समन्वय उपस्थित करती हुई लोक जीवन के समीप पहुँचने का प्रयास करती है।[1] लोक जीवन के उपयुक्त विचारो को जनता के समीप पहुँचाने के लिए लोकभाषा का माध्यम अनिवार्य है। अत, सिद्धो ने अपनी सन्धाभाषा म तत्कालीन लोकभाषा का ही व्यवहार किया। सिद्धो की यह लोकभाषा, जिसे सन्धाभाषा कहा गया है आ० भा० आ० के बाद आनेवाली म० भा० आ० की एक शाखा है। अत, आ० भा० आ० से उसका सम्बन्ध विच्छेद नही किया जा सकता। फिर भी, सन्धाभाषा म उपलब्ध म० भा० आ० की अपनी विशेषताओ को यथोचित महत्त्व देना अनिवार्य है। इसके अभाव मे सन्धाभाषा की मूल प्रवृत्ति का सही मूल्यांकन नही किया जा सकता। सन्धाभाषा के अध्ययन म विद्वानो ने कही-कही इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को छोड दिया है और बहुत से प्राकृत तथा अपभ्रंशकालीन जनभाषा के शब्दो का मूल सस्कृत मे खोजने लगे हैं। इससे कही कही सन्धाभाषा का वास्तविक सौन्दर्य नष्ट हो गया है तथा कुछ स्थलो पर अर्थ की सगति ठीक नही बैठ पाई है। नीचे कुछ ऐसे स्थलो का उल्लेख किया जाता है, जिनमे सन्धाभाषा के शब्दो के अर्थ के लिए विद्वानो ने लोकभाषा के स्थान पर सस्कृत का सहारा लिया है। फलस्वरूप, सन्धाभाषा का वास्तविक अर्थ आँखो से ओझल हो गया है।

बागची के सस्करण मे सरह की निम्नाकित पक्तियाँ मिलती है ·

अक्कट पण्डिअ भन्तिअ णासिअ।

---

१ मिला०, द्विवेदी, ह० प्र० हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४८, पृ० ८।

सअमम्विति महासुह वासिअ ।[1]

(प्रधान, दृढ या क्लेश मुक्त पण्डित भ्रान्ति का नाश कर ज्ञान के द्वारा महासुख मे निवास करते है।)

बागची ने यहाँ अक्कट शब्द को सस्कृत अकाण्ड 'शब्द के बराबर माना है[2] जिसका सामान्य अर्थ आश्चर्य या हठात् है।[3] हरप्रसाद शास्त्री ने भी इस प्रसग मे अक्कट शब्द का अर्थ आश्चर्य माना है।[4] अन्य दो प्रसगो मे प्रयुक्त अक्कट शब्द का अर्थ भी उन्होने आश्चर्य ही लिया है।[5] सकुमार सेन ने भी अक्कट का अर्थ आश्चर्य माना है।[6] तगारे ने इन्ही विद्वानो का अर्थ स्वीकृत किया है।[7]

यहाँ उल्लेखनीय है कि हिन्दी को सिद्ध साहित्य से परिचित करानेवाले विद्वान् राहुलजी ने सरह के उक्त पद का उल्लेख अपनी किसी पुस्तक मे नही किया है। अत अक्कट के अर्थ के सम्बन्ध मे उनके विचार नही मिलते। परन्तु प्राकृत मे अक्कट शब्द से मिलता जुलता एक शब्द मिलता है अकिट्ठ, जिसका अर्थ क्लेश वर्जित है।[8] हेमचन्द्र ने देशी शब्द अक्कुट्ठ का प्रयोग प्रधान या अध्यक्ष के अर्थ मे किया है।[9] नेपाली भाषा मे अक्कट के समकक्ष अक्कड

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३२ प० ७६।

२ दे० वही (सस्कृत छाया)।

३ दे० आप्टे, वामन शिवराम दि प्रैक्टिकल सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी, पूना, १८९० पृ० ३।

४ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० पृ० १०६।

५ दे० वही, च० ३१ तथा ४१।

६ दे० इण्डियन लिग्विस्टिक्स, जिल्द ९ भाग २ ४, पृ० ४३।

७ दे० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रश, पूना, १९४८, पृ० ३४३।

८ दे० सेठ हरगोविन्द दास त्रिकमचन्द पाइअ सद्द महण्णवो कलकत्ता, १९२८ ई०, पृ० १६।

९ दे० पिशेल, आर देशीनाममाला आव हेमचन्द्र, पूना १९३८, शब्द सूची, पृ० १।

शब्द दृढ के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[1] यहाँ टर्नर का मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। व इस शब्द को भारत-योरोपीय भाषा का शब्द नही मानते। अतः, संस्कृत लकाण्ड से अक्कट का सम्बन्ध जोडना चिन्त्य है। अक्कट शब्द से मिलते-जुलते लोकभाषा के उपर्युक्त सभी शब्दो के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धो के समय मे लोकभाषा में अक्कट का अर्थ दृढ, प्रधान या क्लेश-मुक्त प्रचलित था। सरह के उपर्युक्त पद के प्रसग मे भी आश्चर्य अर्थ की सगति नही बैठती। लोकभाषा के अर्थ को स्वीकार करने मे उक्त प्रसग के अर्थ की सार्थकता बहुत बढ जाती है, क्योकि महासुख मे निवास कर सकने की योग्यता वाला पण्डित निश्चित रूप से दृढ, प्रधान या क्लेश-मुक्त हो सकता है। इसमे आश्चर्य का कहीं स्थान नही। अतः, लोकभाषा का अर्थ ही इस प्रसग मे अधिक समीचीन मालूम पडता है।

सरह के एक अन्य पद की दूसरी पक्ति है :

"परम महासुह एक्कुखणे दुरिआनेस हरेए।"[2]

(परम महासुख एक क्षण मे ही अशेष या अनन्त पापो को हर लेता है।)

बागची ने यहाँ दुरिअ शब्द को संस्कृत दुश्चरित के समकक्ष माना है।[3] परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत प्रसग मे दुश्चरित अर्थ की कोई सगति नही बैठती। इसके विपरीत प्राकृत के दुरित (पाप[4]) शब्द से दुरिअ शब्द का सीधा सम्बन्ध माना जा सकता है। महाराष्ट्री मे भी दुरित शब्द पाप के अथ मे प्रयुक्त होता है।[5] राहुलजी ने उक्त प्रसग मे दुरिअ का अर्थ दुरित (=पाप) ही स्वीकार किया है।[6] अत, यहाँ भी सन्धाभाषा के शब्दो को लोकभाषा के समीप मानना अधिक सगत प्रतीत होता है।

१ दे० टर्नर ए कम्पेरेटिव ऐण्ड इटिमॉलॉजिकल डिक्शनरी ऑव दि नेपाली लैंग्वेज, लन्दन, १९-१, पृ० ६४७।
२ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३७, प० ९७।
३, दे० वही, पादटिप्पणी।
४ दे० सेठ, पाइअ-सद्द महण्णवो, १९२८, पृ० ५८२।
५ दे० पर्लसे, मुरलीधर गजानन लिंगुइस्टिक पिक्युलिएरिटीज ऑव ज्ञानेश्वरी, पूना, १९-३, पृ० ३७२।
६. दे० राहुल साकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा, किताब-महल, इलाहाबाद, १९४५, पृ० १२।

सरह के एक अन्य पद की अन्तिम पंक्ति है

अरे णिक्कोलि, बुज्झह परमत्थजे ।[1]

(हे पराजित या गिरे हुए मूर्ख, परम तथ्य को समझो)।

यहाँ बागची ने णिक्कोलि शब्द को संस्कृत निष्कुल के समकक्ष माना है।[2] राहुलजी ने अपने नवीन ग्रन्थ में इसका अर्थ निष्कुल ही स्वीकार किया है।[3] परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत प्रसंग मे निष्कुल सम्बोधन की कोई सार्थकता प्रतीत नही होती। इसके विपरीत प्राकृत के णिक्कूइल (विनिर्जित, जीता हुआ[4]) शब्द से णिक्कोली का सम्बन्ध आसानी से जोड़ा जा सकता है, क्योंकि पराजित या पतित व्यक्तियों का सरह ने सम्बोधित किया होगा, निष्कुल व्यक्ति को सम्बोधित करने के अर्थ की कोई सार्थकता नही दिखाई पड़ती। पूर्वी बोलियो म पतित व्यक्तियों के लिए निखट्टू या निगोड़े जैसे सम्बोधन के शब्दो का व्यवहार आज भी प्रचलित है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे णिक्कोला भी इसी कोटि का कोई सम्बोधन का शब्द हो।

नीचे शास्त्री के संस्करण से भुसुकपाद के चर्यापद की एक पंक्ति उद्धृत की जाती है जिसमें मधाभाषा का सान्निध्य संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषा मे अधिक दिखाई पड़ता है

वण्टिल हाक पडअ चौदीस।[5]

(वशीकरण की ध्वनि चारों तरफ फैल रही है।)

शास्त्री ने यहा वटिल शब्द को संस्कृत वष्ठित के समकक्ष माना है।[6] सुकुमार सेन भी शास्त्री के अर्थ से सहमत हैं।[7] राहुलजी ने इसका अर्थ अस्पष्ट लिया हैं।[8] यहा उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत प्रसंग मे वष्ठिन शब्द से

---

१ द० बागची दोहाकोश पृ० २८ प० ११।

२ द० वही पादटिप्पणी।

३ द० राहुल सांकृत्यायन सिद्ध सरहपाद कृत दोहाकोष बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद पटना १९५७ पृ० १७।

४ द० सेठ पाइअ-सद्द महण्णवो १९२८ पृ० ४८०।

५ द० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ६।

६ द० वही टीका।

७ द० इण्डियन लिंगुइस्टिक्स जिल्द ६ भाग २४, पृ ०।

८ द० राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा, इलाहाबाद, १९४५, पृ० १३२।

पंक्तिया का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। राहुलजी के अस्पष्ट ध्वनि वाले अर्थ से भी प्रसंग की संगति नहीं जुड़ती। इसके विपरीत प्राकृत के वेंटल (=वशीकरणविद्या[1]) शब्द से वेंटिल का बड़ा सुन्दर अर्थ निकलता है। प्रस्तुत प्रसंग में जिस ध्वनि की चर्चा की गई है, उसके कारण हरिण मन्त्रमुग्ध हो कर अपने को भूल जाता है। अत, वेंटिल का वशीकरण वाला अर्थ प्रस्तुत प्रसंग में बड़ा उपयुक्त प्रतीत होता है। बागची के संस्करण में सरह के एक पद की पहली पंक्ति है :

अइरिएहि उद्दूलिअ च्छार।[2]
(पथ के मुखिये क्षार लपेटते हैं।)

यहाँ बागची ने अइरि शब्द को संस्कृत आर्य से उद्भूत माना है।[3] राहुलजी ने इसका अर्थ आचार्य[4] तथा शैव साधु[5] माना है। परन्तु, यह उल्लेखनीय है कि प्राकृत में राजा द्वारा नियुक्त मुखिया के अर्थ में अइर शब्द का प्रयोग प्रचलित था।[6] अपभ्रंश में इस शब्द के इसी अर्थ में प्रयुक्त होने का संकेत हेमचन्द्र से मिलता है।[7] यदि आर्य या आचार्य के बदले अइर शब्द से अइरि का सम्बन्ध माना जाय तो प्रस्तुत प्रसंग के अर्थ का सौन्दर्य कई गुना अधिक बढ़ जाता है। सरह जैसे उस प्रकार के साधुओं के क्षार धारण करने की क्रिया पर व्यंग्य करते हैं जो अपने को धर्म के प्रभुओं द्वारा नियुक्त प्रधान (आयुक्त) मानते हैं।

सरह की एक अन्य पंक्ति बागची के संस्करण में उपलब्ध होती है, जो निम्नांकित है

पवन वहन्ते णउ सो हल्लइ।[8]
(हवा के बहने से वह नहीं हिलता।)

---

१ दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो १९२८ पृ० १०२१।
२ दे० बागची दोहाकोश पृ० १, प० ४।
३ दे० जर्नल आव दि डिपार्टमेण्ट आव लेटर्स, जिल्द, २८, कलकत्ता, विश्वविद्यालय प्रेस १९३५, पृ० ४७।
४ दे० राहुल हिन्दी-काव्य धारा, पृ० ५।
५ दे० राहुल सिद्धसरहपाद-कृत दोहाकोश, पृ० ५।
६ दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो, पृ० ४।
७ पिशेल देशीनाममाला ऑव हेमचन्द्र शब्द सूची, पृ० १।
८ दे० बागची दोहाकोश, पृ० १२, प० ८।

बागची ने इस प्रसग मे हल्लइ का अथ शब्द करना माना है।[१] वे सम्भवत न० भा० आ० के हल्ला शब्द के सस्कृत-रूप हलहला स इसकी उत्पत्ति मानते हैं।[२] परन्तु प्राकृत मे हल्ल शब्द हिलना के अथ म प्रयुक्त हुआ है।[३] अपभ्रश म हल्लिअ शब्द चलना अर्थात हिलना के अथ म हेमचन्द्र द्वारा प्रयुक्त किया गया है।[४] हल्लइ शब्द से मिलते जुलते रूप मराठी, गुजराती सिन्धी पजाबी हिन्दी आदि प्राय सभी न० भा० आ० मे हिलना के अथ मे ही प्रयुक्त मिलते हैं।[५] राहुलजी ने भी उपयुक्त प्रसग मे हिलना अथ ही स्वीकार किया है।[६] अत सस्कृत म हल्लइ शब्द का मूल खोजने के कारण बागची का अर्थ प्रसग के अनुकूल नहीं बैठता।

बागची के सस्करण म उपलब्ध सरह की एक और पक्ति उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जाती है

कोवि चिण्णे कर सोसइ दिट्ठा[७]

(कोई इकटठा करके या चिढकर शोषण करता हुआ दिखाई देता है।)

बागची न चिण्णे कर का अथ विचित्र करण माना है।[८] राहुलजी ने चिन्ता करना अथ लिया है। परन्तु प्राकत म चिण शब्द इकटठा करने के अथ म प्रयुक्त हुआ है।[९] नेपाली भाषा मे चिड शब्द हिन्दी चिढ के अथ मे प्रयुक्त हुआ है।[१०] यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राकत तथा नेपाली भाषाओ के अथो से उक्त प्रसग की सगति पूणत बैठती है क्योंकि मठो के साधु या तो शिष्यो को एकत्रित करके आत्मशोषण की शिक्षा देते होंगे या अन्य प्रणालियो

---

१ दे० वही (सस्कृत छाया)।
२ मिला० टनर नेपाली डिक्शनरी लन्दन, १९३१ पृ० ६ ।
  दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो कलकत्ता १९२८ पृ० ११८७।
४ दे० पिशल देशीनाममाला आव हेमचन्द्र शब्द सूची पृ० ९१।
५ दे० तगारे हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रश पृ ४ ३।
६ दे० राहुलजी हिन्दी काव्यधारा पृ० २।
७ दे० बागची दोहाकोश पृ० १९ प० १०।
८ दे० वही सस्कृत छाया।
९ दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो, पृ० ४०७।
१० दे टनर नेपाली डिक्शनरी पृ० १७८।

चिढ कर इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए बाध्य हो जाते होंगे। चिढने तथा प्रदर्शन में जो व्यग्य है, वह सरह की विशेषता है, अत लोकभाषा के निकट वाले ये दोनो अर्थ बहुत दूर तक सार्थक है। विचित्रता का अर्थ तो किसी भी हालत मे इस प्रसग म ठीक नही बैठता। यहाँ टर्नर का मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होने नपाली चिड शब्द को भारोपीय भाषा का शब्द नही माना है।[1] अत, सन्धाभाषा के चिण्ने शब्द को सस्कृत विचित्र से उद्भूत मानना चिन्त्य है।

सरह का एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। वह पक्ति है :

सरहे णित्त कढ्ढिउ **राव**।[2]

बागची ने यहाँ राव का अर्थ ऊँचा लिया है।[3] प्राकृत मे राव शब्द आह्वान या आवाज के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[4] कोशली लोकभाषा म राव का प्रयोग पुकार के अर्थ मे ही हुआ है।[5] राहुलजी ने इस प्रसग मे, अपने नए ग्रन्थ मे, लोकभाषा का पुकार वाला अर्थ ही स्वीकार किया है।[6] प्रस्तुत प्रसग म बागची के अर्थ की कोई सार्थकता नही दिखाई पडती। लोकभाषाओ के अर्थ ही इस प्रसग मे ठीक बैठते है। अत, यहाँ भी सन्धाभाषा संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषा के निकट प्रतीत हाती है।

शास्त्री के सस्करण से एक उदाहरण और नीचे प्रस्तुत किया जाता है :

दुलि दुहि पिटा [illegible]।[7]

(कछुए को [illegible] कर [illegible]

यहाँ शा[illegible] ने दुलि को सस्कृत [illegible] के बरा[illegible] मा[illegible] है।[8] परन्तु, यह

---

१ दे० [illegible]र नेपाली डिक्शनरी, पृ० १७४।
२ दे० बा[illegible] दोहाकोश, पृ० १६, पृ० ३[illegible]।
३ दे० वही (स[illegible]त छाया) [illegible]ालय
४ दे० सेठ पाइअ सद्[illegible] [illegible]टटर।
५ दे० पण्डित दामोदर उक्तिव्यक्तिप्रकरण, भारती विद्या-भवन, बम्बई, १ ५३, पृ० ६६।
६ दे० राहुल साकृत्यायन सिद्ध सरहपाद-कृत दोहाकोश, पटना, १९५७, पृ० ७।
७ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च २।
८ दे० वही, सस्कृत-टीका।

उल्लेखनीय है कि सुकुमार सेन ने इस प्रसंग में दुलि का अर्थ कछुआ लिया है।[1] प्राकृत में भी दुलि शब्द कछुए का ही बोधक है।[2] यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि संस्कृत में दुलि शब्द कछुए के ही अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ संस्कृत का दुलि शब्द लोकभाषाओं में अपना रूप तथा अर्थ सुरक्षित रखता है। प्रस्तुत प्रसंग में उलटबासिया की शैली द्वारा संसार के विपरीत मार्ग चलने का संकेत किया गया है। यहाँ बछुए का दूध दुहने तथा वृक्ष का फल घडियाल द्वारा खाने की चर्चा आई है। अतः, इस प्रसंग में दुलि का कछुआ अर्थ ही अधिक उपयुक्त है। द्विता को दुहने वाले अर्थ की कोई संगति नहीं दिखाई देती।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वानों द्वारा संधा-भाषा के सभी शब्दों का मूल संस्कृत के शब्दों में खोजने का प्रयास कितना असंगत है। उससे सन्धाभाषा का सही अर्थ कई स्थानों पर स्पष्ट ही नहीं हो पाता। इसके विपरीत छाइअ बलद तथा वढ इत्यादि सन्धाभाषा में प्रयुक्त लोकभाषा के शब्दों का जहाँ लोकभाषा से सम्बद्ध अर्थ लिया गया है वहाँ अर्थ की संगति पूर्णतः बैठी है तथा प्रसंगों का सौन्दर्य अत्यधिक निखर उठा है।[3] अतः, भाषा की विकास की प्रवृत्ति देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सन्धाभाषा का सान्निध्य संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषा से अधिक है। अनावश्यक रूप से संस्कृत के शब्दों में सन्धाभाषा के शब्दों का उद्भव खोजना उसकी [illegible] प्रियता को नष्ट करता है।

(०)

---

१ दे० इण्डियन लिंगुइस्टिक्स जिल्द ६ भाग ४-४ पृ० ६७।

२ दे० सेठ पाइअ सद्द महण्णवो, पृ० ५८३।

३ दे० शास्त्री बौ० गा० दो० च० ६ और २३ तथा बागची दोहाकोश पृ० २६, प० ५२।

पंचम खण्ड

सन्धाभाषा के कुछ प्रमुख पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या तथा ऐतिहासिक विवेचन

सन्धाभाषा के कुछ प्रमुख पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

सन्धाभाषा मे तान्त्रिक साधना के कुछ पारिभाषिक शब्द उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनके मौलिक अर्थो मे बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। नीचे उनमे से कुछ प्रमुख शब्दो का उल्लेख किया जाता है।

सहज

सिद्धो की साधना मे सहज का सबसे प्रमुख स्थान है। सहज का शाब्दिक अर्थ है स्वाभाविक या जन्मजात। अत, धर्म का प्राकृतिक स्वरूप ही सहज है।[1]

सहज की अभिव्यक्ति के लिए सन्धाभाषा मे दो प्रकार की शैलियो का प्रयोग हुआ है। पहले प्रकार की शैली मे सहज की अनिर्वचनीयता का वर्णन किया गया है[2] तथा सहज से परे व्यक्तियो को पथभ्रष्ट बताया गया है। सहज से पृथक् व्यक्ति परमानन्द को नही जान पाता[3], वह पाप ग्रस्त बना रहता है।[4]

दूसरे प्रकार की शैली मे सहज का स्वरूप बतलाने का प्रयास किया गया है। सहज भाव तथा अभाव दोनो से परे हैं।[5] सहज चित्त को निर्मल बना देता है[6] तथा एकाग्रता लाता है।[7] इस प्रकार, सहज परमानन्द का प्रतीक है।[8] मनुष्य के साथ सहज का सम्बन्ध उतना ही घनिष्ठ है, जितना पत्नी का सम्बन्ध पति के साथ।[9] फिर भी, सहज इस ससार से

---

१ मिना० दासगुप्त शशिभूषण ऑब्सक्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ताविश्वविद्यालय, १९४५, पृ० ९० ।

२ द० बागची दोहाकोश, पृ० १३, प० ६ सहजामिअ रस सयल जग कासु कहिज्जइ कीस ।

३ दे० वही, पृ १७, प० १- ।

४ दे० वही, पृ० २६, प० ६३ ।

५, दे० वही, पृ० , प० २ ।

६ द० वही, पृ० ४, प० १० ।

७, दे० वही पृ० २५, प० ८५ ।

८, दे० वही, पृ० ७, प० २३ ।

९, द० शास्त्री बौ० गा० दो , च० २८ ।

परे है। वह आकाश में उदित किसी अत्यन्त अद्भुत पदार्थ की भाँति है, जिसका दर्शन केवल साधक ही कर सकता है।[1] उसकी अद्भुतता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि वह एक साथ ही तीनों लोकों में व्याप्त दिखाई पड़ता है।[2] अतः, सहज सबसे अधिक व्यापक पदार्थ है।

सन्धाभाषा में सहज सारी सृष्टि का मूल माना गया है। अतः, वह जन्म-मरण से परे है। यद्यपि आरम्भ में बौद्धधर्म आत्मा, परमात्मा आदि में विश्वास नहीं करता था, तथापि परवर्ती बौद्धधर्म में आत्मा, परमात्मा तथा ईश्वर-सम्बन्धी विचार प्रवेश कर गए। सन्धाभाषा में ईश्वर-सम्बन्धी विचार ही सहज के माध्यम से व्यक्त किए गए हैं। इसी से इसका विस्तृत विवेचन सन्धाभाषा में मिलता है।[3]

समरस

चूँकि द्वैत सारे दुःखों का मूल है, इसलिए अद्वैत का ज्ञान सभी योग-सम्प्रदायों का परम लक्ष्य है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में उसके नाम भिन्न-भिन्न हैं। अतः, अद्वय, युगनद्ध इत्यादि समरस शब्द के ही पर्यायवाची हैं।[4] समरस शब्द का व्यवहार हिन्दू तथा बौद्ध तन्त्रों में भी मिलता है। वहाँ शिव तथा शक्ति, प्रज्ञा तथा उपाय के मिलन द्वारा समरसता की स्थिति का उल्लेख किया गया है।[5] अतः, समरस शब्द की उत्पत्ति बहुत प्राचीन प्रतीत होती है।

जगत् की अनेक विभिन्नताओं में एकता का दर्शन ही सरसता कहलाता है। सन्धाभाषा में सरसता की स्थिति सहज में ही मानी गई है।[6] सहजानन्द वहाँ सरसता का पर्यायवाची है।[7] यह समरस की भावना तभी आती है, जब मन स्थिर रहता है। उस अवस्था की उपलब्धि के बाद ब्राह्मण

---

१. दे० शास्त्री . बौ० गा० दो, च० ३०।
२. दे० वही, च० ४३।
३. मिला०, दासगुप्त, शशिभूषण ऑब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ता, १९४६, पृ० ९८।
४. दे० वही, भूमिका, पृ० ३५।
५. दे० वही, पृ० ३४।
६. दे० बागची दोहाकोश, पृ० ३, प० २।
७. दे० वही, पृ० १२, प० ६।

तथा शूद्र का भेद साधक को नही दिखलाई पडता।[1] यही समरस होने की सबसे बड़ी पहचान है। सन्धाभाषा में सरसता को ठास उदाहरण द्वारा समझाया गया है। जिस प्रकार पानी में नमक विलीन होकर अपनी सत्ता पानी मे मिला देता है, उसी प्रकार साधक इस व्यापक जगत् म अपना अस्तित्व विलीन कर दे, वही समरसता है।[2] *इस तरह समरस तथा सहज बहुत अश में एक दूसरे के निकट हैं।*

महासुह

महासुख की भावना तान्त्रिक बौद्धधर्म मे पहले-पहल आई। प्रारम्भिक बौद्ध धम म जो निर्वाण की भावना थी, वह परवर्ती बौद्धधम में महासुख में परिवर्तित हो गई।[3] महासुख सन्तोष की चरम भावना का प्रतीक है। दैनिक जीवन मे सन्तोष की उपलब्धि नही होती। इसी से साधक सन्तोष या महासुख की प्राप्ति पर अधिक जोर देता है।[4] महासुख की भावना को तन्त्रों *में इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि अद्वयवज्रसंग्रह म उसके बिना ज्ञान* की प्राप्ति ही असम्भव बताई गई है।[5] ज्ञानसिद्धि मे इन्द्रभूति ने महासुख के रूपों पर विचार किया है।[6] इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि तन्त्रो ने महासुख को बहुत ऊँचा स्थान दिया है।

सन्धाभाषा म महासुह की प्राप्ति साधक का चरम लक्ष्य है। महासुह ससार का सबसे बडा सत्य माना गया है, जिसके सामने मिथ्या धर्म के सिद्धान्त कभी नही टिक सकते। वे पानी मे लवण की भाँति विलीन हो

---

१ दे० बागची : दोहाकोश पृ० २५, प० ४६।

२ दे० वही, पृ० ४६, प० ३२।

३ दे० दासगुप्त, शशिभूषण ऑब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ता, १९४६, पृ० ३५।

४ दे० गुन्थर, हर्बर्ट वी युगनद्ध, चौखम्भा संस्कृत-सीरिज, बनारस, १९५२, पृ० १७।

५ दे० भट्टाचार्य, विनयतोष अद्वयवज्रसंग्रह, *महासुखप्रकाश, गायकवाड ओरिएण्टल सीरिज, स० ४०, पृ० ५०* "सुखाभावे न बोधि स्यात् ....।"

६ दे० इन्द्रभूति ज्ञानसिद्धि, सप्तम परिच्छेद, गायकवाड ओरिएण्टल सीरिज, स० ४४, पृ० ५७।

जाते हैं।[1] अत्यन्त व्यापक होने के कारण महासुह के आदि मध्य तथा अन्त का कोई पता नहीं। उसमें अपने तथा पराये का भेद भाव नहीं रहता।[2] इस सरसता की भावना के कारण सन्धाभाषा में महासुह को अचित्त की संज्ञा दी गई है।[3] महासुह चारों ओर से दुर्गम पर्वतों द्वारा घिरा हुआ है, परन्तु सहज के द्वारा वहाँ एक क्षण में पहुँचा जा सकता है।[4] इसके लिए एक और मार्ग का उल्लेख सन्धाभाषा में मिलता है। वाम तथा दक्षिण पक्षों को छोड़कर मध्यम मार्ग से मिलकर चलने पर महासुख की उपलब्धि सम्भव है।[5] सन्धा-भाषा में महासुह की प्राप्ति सर्वज्ञता का प्रतीक है।[6] उसके द्वारा जगत् के असंख्य पाप क्षण-भर में उसी प्रकार दूर हो जाते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा से अन्धकार।[7] इसीलिए, महासुह को सन्धाभाषा में शय्या के समान आनन्द दायक तथा कपूर के समान सुस्वादु तथा सुगन्धित माना गया है।[8] महासुख के इस क्रमिक अर्थ परिवर्तन को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा में महासुह का वही अर्थ लिया गया है, जो वाच्यार्थ के अत्यन्त निकट है तथा जो जन-साधारण के लिए ग्राह्य है।

सुण्ण

बौद्धधर्म में जगत को शून्य के समान निस्सार माना गया था। परन्तु, वज्रयान में शून्य वज्र के नाम से पुकारा जाने लगा।[9] बौद्धधर्म में सुण्णता (शून्यता) का अर्थ शाश्वतता तथा वास्तविक आनन्द से शून्य है।[10]

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ६, प० २।
२ दे० वही, पृ० २१ प० २७।
३ दे० वही पृ० ३३, प० ७८।
४ दे० वही, पृ० ४५ प० २६।
५ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० ८।
६ दे० वही, च० २७।
७ दे बागची, दोहाकोश, पृ० ४७, प० ६७।
८ दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० २८।
९ दे० दासगुप्त, शशिभूषण ऑब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ता, १९४६, पृ० २८।
१० दे० न्यान्तिलोक बुद्धिस्ट डिक्शनरी, फोविन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, कोलम्बो, १९५०, पृ० १५२।

सन्धाभाषा में जगत् तथा प्राणी के अस्तित्व की शून्यता का बोध 'सुण्ण' से कराया जाता है।[1] परन्तु केवल शून्यता का सन्धाभाषा में कोई महत्त्व नहीं। उसके साथ करुणा का चिन्तन आवश्यक है।[2] केवल शून्य में विचरण करने से कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।[3] शून्य रूपी तरुवर मन्धाभाषा में निष्करुणता का प्रतीक है।[4] वह श्रमा नहीं करता। अत, उसके साथ करुणा का संयोग बड़ा आवश्यक है। शून्यता की ध्वनि सर्वव्यापक है।[5] उसे नैरात्मा का प्रतीक माना गया है, जिसे योगी अपने गले में हार की तरह धारण करता है।[6] अत, शून्य का परम्परागत अर्थ सन्धाभाषा में बहुत सीमित हो गया है। कबीर में शून्य या सुन्न उस बिन्दु-रूपी छिद्र का प्रतीक है जहाँ ब्रह्म का निवास है।[7]

झाण

सन्धाभाषा का झाण शब्द संस्कृत के ध्यान शब्द से उद्भूत है। बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा में कोलाहल पूर्ण जगत् को छोड़ कर ध्यान के माध्यम से अर्हता की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है।[8] अत सन्धाभाषा के झाण शब्द के प्रयोग का आरम्भ हीनयान सम्प्रदाय में मिलता है। परन्तु, सहज-साधना पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण सिद्धों ने ध्यान की अतिशय एकाग्रता को अपने सम्प्रदाय में बहुत गौण स्थान दिया है। सन्धाभाषा में झाण का अर्थ ध्यान लिया गया है। अत, झाण की व्यर्थता का पूरा विवेचन सन्धाभाषा में मिलता है। केवल झाण में प्रविष्ट हो जाने से मोक्ष नहीं

---

१ दे० बागची दोहाकोश, पृ० ८, प० ३४।
२ दे० वही पृ० ३२, प० ७१।
३ दे० वही, पृ० ३१, प० ७०।
४. दे० वही, पृ० ३९, प० १०९।
५. दे० शास्त्री बौ० गा० दो०, च० १७।
६ दे० वही, च० २८।
७. दे० वर्मा, रामकुमार कबीर का रहस्यवाद, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९४४, पृ० १७८।
८. दे० दासगुप्त, शशिभूषण ऑब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ता १९४६, पृ० १४।

मिल सकता।[1] इसके विपरीत, ज्ञान हीन व्यक्ति भी यदि वासनाओं का दमन कर ले, तो उसे परम ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।[2] इस प्रकार, सन्धाभाषा मे ज्ञान साधन है, साध्य नही। ध्यान के आडम्बर द्वारा विभिन्न सम्प्रदायो मे जन साधारण को ठगने की जो प्रणाली प्रचलित थी, उसका घोर विरोध सन्धाभाषा मे मिलता है।[3] इसलिए, सन्धाभाषा मे यह प्रश्न उठाया गया है कि जो प्रत्यक्ष है, उसे ज्ञान मे क्यो बाँधा जाय तथा जो ध्यान से परे है, उस क्षण मे क्यो लाने का प्रयास किया जाय।[4]

उपर्युक्त पारिभाषिक शब्दो के अतिरिक्त कुछ अन्य पारिभाषिक शब्द भी सन्धाभाषा मे मिलते हैं, जिनके अर्थो मे परम्परागत अर्थो से कोई विशेष अन्तर नही मिलता। चन्द्र तथा सूर्य इसी प्रकार के शब्दो मे से हैं। इनके अर्थ का विस्तृत विवेचन बागची ने किया है।[5] सन्धाभाषा मे चन्द्र सूर्य जीवन के दो पक्ष हैं, जो क्रमश रात तथा दिन का प्रतिनिधित्व करते है। अत, इन दोनो काल-बोधक तत्वो को नष्ट कर योगी को कालज्ञान-रहित होना चाहिए। चन्द्र-सूर्य को इडा-पिंगला तथा वाम दक्षिण पक्षो का समानार्थी भी बतलाया गया है। इसी प्रकार, चेल्लु, भिक्खु, पव्वजिउ, खसम, अवधूई इत्यादि शब्दो के अर्थ भी बहुत कुछ परम्परागत ही हैं।

---

१. दे० बागची दोहाकोश, पृ० १७, प० २४।
२ दे० वही, पृ० १८, प० १६।
३ दे० वही पृ० २२, प० ३३।
४. दे० वही पृ० १६, प० २०।
५ दे० बागची प्रबोधचन्द्र स्टडीज इन दि तन्त्राज कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३९, पृ० ६१—७३।

उपसंहार

उपसंहार

बौद्ध सिद्ध या वज्रयानी सिद्ध कहलानेवाले सिद्धों का भारतीय धर्म-साधना में विशिष्ट स्थान है। गोरखनाथ, कबीर तथा जायसी के सम्प्रदाय इसी परम्परा के विकास के प्रमाण हैं। फिर भी, प्रकाश में नहीं आ पाने के कारण सिद्धों के साहित्य से हिन्दी-जगत् बहुत काल तक अपरिचित रहा। हिन्दी की पृष्ठभूमि तैयार करनेवाले इस साहित्य को जनता के समक्ष उपस्थित करने का सर्वप्रथम श्रेय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री को है, जिन्होंने सन् १९१६ ई० में नेपाल के दरबार पुस्तकालय से निकाल कर इसे हमारे लिए सुलभ बनाया। इस दिशा में दूसरा सराहनीय प्रयास स्वर्गीय डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का है, जिन्होंने तिब्बती पाठों के सहारे शास्त्री महोदय के पाठ में आवश्यक संशोधन कर इसे पहली बार 'डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स' की सरकृत पत्रिका में प्रकाशित किया[1] तथा पुनः संशोधित और परिवर्धित रूप में छाया तथा टीका के साथ इसे पुस्तकाकार प्रकाशित कराया।[2] तीसरा प्रयास राहुलजी का है, जिन्होंने सन् १९४५ ई० में नेपाली प्रतियों के आधार पर सिद्धों के साहित्य का संकलन प्रकाशित किया[3] तथा पुनः तिब्बती पाठों के आधार पर सरहपाद के दोहों का एक संग्रह कुछ महीने पूर्व प्रकाशित कराया।[4]

इन विद्वानों के प्रयास के फलस्वरूप सिद्धों का साहित्य प्रकाश में आया तथा संस्कृत-छाया के साथ उसकी कुछ टीकाएं भी सम्पादकों द्वारा प्रस्तुत की गई। परन्तु, उस साहित्य का सर्वप्रथम भाषावैज्ञानिक अध्ययन डॉ० शहीदुल्ला ने किया। उन्होंने सरहपा तथा कण्हपा के दोहों का ध्वनि तथा रूपगत अध्ययन अपने प्रबन्ध में किया, जिससे सिद्धों की भाषा पर बहुत प्रकाश पड़ा।[5]

---

१ दे० जर्नल ऑव दि डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स, जिल्द २८, कलकत्ता-विश्वविद्यालय प्रेस, १९३५।

२ दे० बागची दोहाकोश, भाग १, कलकत्ता-संस्कृत सीरिज, सख्या २५ सी, १९३८।

३ दे० राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्यधारा, किताब-महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण, १९४५।

४ दे० राहुल सांकृत्यायन : सिद्ध सरहपाद-कृत दोहाकोश, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९५० (प्रथम सस्करण)।

५. दे० शहीदुल्ला : Les Chants Mystiques de Kanha et de Sarah, पेरिस, १९२८ ई०।

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा सिद्ध साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप एक ओर जहाँ उस साहित्य से हमारा परिचय हुआ, वहाँ दूसरी ओर विद्वानों में सिद्धों की भाषा के प्रश्न पर परस्पर बहुत मतभेद पैदा हो गया। शास्त्री महोदय ने, जैसा उनकी पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है, सिद्धों की भाषा को प्राचीन बँगला का नमूना कहा।[1] परन्तु, प्रसिद्ध विद्वान् सुनीतिकुमार चटर्जी ने, अपने बँगला-भाषा के उद्भव तथा विकास विषयक शोध ग्रन्थ में स्पष्ट स्वीकार किया है कि सिद्धों की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश है, प्राचीन बँगला नहीं। चर्यापदों की भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने इतना अवश्य कहा है कि उसमें बँगला प्रभाव अधिक है।[2] सिद्ध साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय बागची महोदय भी चटर्जी महोदय के विचारों से सहमत हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में यहाँ तक कहा कि शास्त्री महोदय ने जिस हस्तलिखित प्रति से अपना पाठ लिया है, वह खो गई है तथा नेपाली लिपिकारों ने हस्तलिखित ग्रन्थों में तालव्य श तथा दन्त्य स का अन्तर स्पष्ट नहीं समझने के कारण प्रतिलिपि में बहुत सी भूलें कर दी हैं। अतः, शास्त्री के पाठ की प्रामाणिकता को बागची बहुत महत्त्व नहीं देते।[3] ज्यूल्स ब्लॉक का उद्धरण देते हुए उन्होंने सिद्धों की भाषा को पश्चिमी अपभ्रंश माना है, पूर्वी अपभ्रंश नहीं।[4]

बँगला तथा शौरसेनी के इस विवाद में बनिकान्त काकती ने एक नई समस्या खड़ी की। उन्होंने सिद्धों की भाषा को असमी भाषा का प्राचीन रूप बताया। महन्ती ने आज से दस वर्ष पूर्व उसे उड़िया का प्राचीन रूप

---

१ दे० शास्त्री : हजार बछरेर पुरान बांगला भाषाय बौ० गा० दो०, बंगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता।

२ दे० चटर्जी, सुनीतिकुमार : दि ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट ऑव दि बंगाली लैंग्वेज, भाग १, कलकत्ता-विश्वविद्यालय प्रेस, १९२६, पृ० १११-११२।

३ दे० बागची : दि सिबिलैण्ट्स इन बुद्धिस्ट दोहाज, इण्डियन लिंगुइस्टिक्स, जिल्द ५, भाग १-४, १९३५, पृ० ३५३।

४ दे० वही, पृ० ३०६।

५ दे० काकती, बनिकान्त : असमीज—इट्स फारमेशन एण्ड डेवलेपमेण्ट, गोहाटी, आसाम, १९४१, भूमिका, पृ० ९।

कहा।[1] इस दिशा में काशीप्रसाद जायसवाल तथा राहुल सांकृत्यायन ने एक नए मत का प्रतिपादन किया। उन्होंने सिद्धों की भाषा को प्राचीन मगही तथा पुरानी हिन्दी या हिन्दी का आदि रूप कहा है।[2] इसके प्रतिकूल जयकान्त मिश्र ने उसे प्राचीन मैथिली का रूप सिद्ध करने का प्रयास किया।[3] अखिलभारतीय प्राच्य सम्मेलन नागपुर के मंच से भी उन्होंने अपने इस मत का प्रतिपादन किया।[4]

सिद्धों की भाषा के सम्बन्ध में उठनेवाले विवादों का यही संक्षिप्त रूपरेखा है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि राहुलजी ने सिद्धों की भाषा के सम्बन्ध में अपने प्राचीन विचार बदल दिए हैं तथा वे भी उसे शौरसेनी अपभ्रंश (कन्नौज की भाषा) मानने लगे हैं।[5] इस विवेचन में यह

---

१ दे० महताब, आर्त्तवल्लभ उत्कल-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, मार्च, १९५१ ई०, पृ० ३।

२ दे० (क) जायसवाल, काशीप्रसाद एकादश प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (भागलपुर) के सभापति का भाषण, प्र० प्रधान मन्त्री, स्वागत समिति भागलपुर सं० १९९० वि०, पृ० ११।
(ख) जायसवाल, का० प्र० सभापति भाषण (प्रोसीडिंग्स ऐण्ड ट्रांजैक्शन्स आव दि सेवन्थ आल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, दिसम्बर, १९३३ बड़ौदा ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा, १९३५।
(ग) राहुल सांकृत्यायन . चौरासी सिद्ध, 'सरस्वती', जून १९३१, पृ० ७१५।
(घ) राहुल सांकृत्यायन पुरातत्त्व निबन्धावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग पृ० १६७।

३ दे० मिश्र जयकान्त ए हिस्ट्री आव मैथिली लिटरेचर, जिल्द १, इलाहाबाद, १९४८, पृ० १०१।

४ दे० मिश्र, जयकान्त दि लैंग्वेज आव दि चर्यापद (प्रोसीडिंग्स ऐण्ड ट्रांजैक्शन्स ऑव आ० इ० ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, १३वाँ अधिवेशन, नागपुर विश्वविद्यालय, अक्टूबर, १९४६ ई०। प्र०, नागपुर विश्वविद्यालय, १९५१ पृ० ८७—९०।)

५ दे० राहुल सांकृत्यायन साहित्यिक अपभ्रंश पुरानी कन्नौजी, दृष्टिकोण', पटना, मई, १९५६ ई० पृ० १० ११।

स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धों की भाषा को पूर्वी अथवा पश्चिमी भाषाओं का आदि रूप मानने का आग्रह विद्वानों ने किया है, परन्तु उसे मध्यदेश की भाषा का आदि रूप मानने का प्रस्ताव किसी ने सामने नहीं रखा। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि सिद्धों के सिद्धपीठ या साधना-केन्द्र उत्तर भारत में महाराष्ट्र से बंगाल तक फैले हुए थे, परन्तु कुछ अन्य कारणों तथा राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण इनका मुख्य केन्द्र पूर्वी भारत था, जिसमें नालन्दा, विक्रमशिला इत्यादि प्रधान थे।[1] सम्प्रदाय की एकता के कारण इन सभी केन्द्रों का एक दूसरे से सम्बन्ध बना हुआ था तथा सिद्ध एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र की यात्रा किया करते थे। मध्यदेश में किसी सिद्धपीठ के स्थित होने का प्रमाण अब तक नहीं मिला है।[2] अतः, सिद्धों की भाषा का सम्बन्ध मध्यदेश की भाषा से जोड़ने का कोई भाषागत आधार विद्वानों को नहीं मिल सका। उत्तर भारत में पूरब से पश्चिम तक सिद्धपीठों का भ्रमण करनेवाले सिद्धों की भाषा में पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेश की भाषाओं की छाप मिलने के कारण सिद्धों की भाषा के सम्बन्ध में परस्पर खींचातानी होती रही। वास्तविक स्थिति यह है कि पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेशों की भाषाओं में जितना अन्तर आज दिखाई पड़ता है, उतना अन्तर ७०० ई० के लगभग नहीं था।[3] चटर्जी ने हुएनसांग का उद्धरण देते हुए यह कहा है कि उस समय बिहार, बंगाल तथा असम में ध्वनि का थोड़ा अन्तर अवश्य दिखाई पड़ता था।[4] अपनी भाषा को अन्य भाषा के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने की चेष्टा का संकेत सबसे

---

१. दे० भारती, धर्मवीर : सिद्ध साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५, पृ० ६५।

२ दे० वही।

३ मिश्र, चटर्जी की भूमिका, पृ० १० (ए हिस्ट्री ऑव मैथिली लिटरेचर भाग १, इलाहाबाद, १९४९)।

ग्रन्थ की भूमिका लिखते हुए भी चटर्जी ने मिश्र जी द्वारा सिद्धों की भाषा को मैथिली का आदि रूप मानने के विरोध में अपना मत व्यक्त किया है।

४ दे० चटर्जी : दि ओरिजिन ऐण्ड डेवलेपमेंट ऑव दि बंगाली लैंग्वेज, कलकत्ता, १९२६, पृ० ९१।

पहले इशा मे दिखाई पडता है ।[1] अत इशा के पहले की भाषाओं म परस्पर अत्यधिक समानता की स्थिति सवथा स्वाभाविक प्रतीत होती है। सिद्धों की भाषा के स्वरूप का अध्ययन इसी पृष्ठभूमि में करना उचित होगा।

हिन्दी के उद्भव तथा विकास के सम्बन्ध मे विचार करते हुए डा० विश्वनाथ प्रसाद न इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि यूराप की रोमास-भाषाओं (Romance Languages)[2] की भाति हिन्दी का उद्भव भाषाओं के परस्पर अभिसरण की प्रक्रिया (Process of Convergence) स हुआ, अपसरण की प्रक्रिया (Process of Divergence) से नही। उन्होंने उद्योतन सूरि का उद्धरण देते हुए बतलाया है कि यद्यपि आठवी नवी शताब्दी मे पजाब से बिहार बगाल तक सोलह प्रादेशिक भाषाएँ बोली जाती थी, तथापि अपनी अपनी प्रादेशिक विशेषताओं के बावजूद वे सभी भाषाएँ एक केन्द्रीय भाषा के गठन म सहयोग द रही थी। यही कारण है कि आठवी से बारहवी शताब्दी तक साहित्यिक भाषा का स्वरूप बहुत कुछ व्यवस्थित मिलता है।[3] यह भाषा सिद्धों की सन्धाभाषा है जिससे हिन्दी का विकास हुआ।

आठवी से बारहवी सदी तक [illegible] धार्मिक [illegible] होने के कारण ही सन्धाभाषा मे सभी, [illegible] अपभ्रंश क शब्द तथा [illegible] चूँकि राज्याश्रय प्राप्त होने [illegible] के नालदा तथा अग की विक्रमशिला क केन्द्रों म तत्कालीन लोकभाषा [illegible] रचा, इसलिए बिहारी (मगही [illegible] आदि) भाषा को सन्धाभाषा का मूल आधार मानने में कोई आपत्ति नहीं [illegible] सकती। [illegible] इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि अभिसरण की प्रवृत्ति के कारण इस मूल बिहारी भाषा मे सभी प्रदेशो के शब्द बडी उदारता स लिए गए।

---
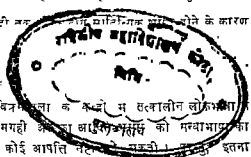
१ इशा अल्लाह खा रानी केतकी की कहानी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तृतीय आवृत्ति स० २००२, पृ० १।

२ व्याख्या के लिए अवलोकनीय
शिप्ले, जोसेफ डिक्शनरी आव वल्ड लिट्ररी टर्म्स, जाज अलेन ऐण्ड अनविन लि०, लन्दन, १९५५, पृ० ३४९ ५०।

३ यह निबन्ध बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित किए जानेवाले ग्रन्थ 'बिहार थ्रू दि एजेज' के लिए लिखा गया था।

अपनी भ्रमणशील प्रवृत्ति के कारण सिद्ध उत्तर भारत के सभी प्रदेशों तथा उनकी भाषाओं से परिचित थे। अतः, उन्होंने अपनी भाषा को सबके लिए ग्राह्य बनाने का पूरा प्रयास किया। दूसरा कारण यह है कि मागधी अपभ्रंश से उद्भूत होने के कारण सभी आधुनिक पूर्वी भाषाओं के आरम्भिक रूपों में विद्वानों को बहुत कुछ साम्य दिखाई देता था। इसीलिए, सन्धाभाषा में असमी, मैथिली, अंगिका इत्यादि सभी पूर्वी बोलियों के आदि रूपों का भ्रम विद्वानों को हो गया। राहुलजी ने आज यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सन्धाभाषा पर उपर्युक्त सभी पूर्वी भाषाओं का समान रूप से अधिकार माना जा सकता है।[1] अतः इसे असमी, बँगला, मैथिली, अंगिका इत्यादि केवल एक प्रदेश की भाषा का आदि रूप नहीं कहा जा सकता।

शौरसेनी अपभ्रंश के सम्बन्ध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि जिस प्रकार कुछ दिन पूर्व व्रजभाषा हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा थी, उसी प्रकार शौरसेनी अपभ्रंश राजपूत राजाओं की भाषा होने के कारण सम्पूर्ण उत्तर भारत में साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य थी।[2] इसीलिए, मूल आधार अंगिका, मगही या बिहारी भाषा रहने पर भी सन्धाभाषा में शौरसेनी अपभ्रंश का बहुत अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। सिद्धों की भाषा को उड़िया का आदि रूप माननेवाले विद्वान् महन्ती ने भी उस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट स्वीकार किया है।[3] अतः, पश्चिमी तथा पूर्वी प्रदेशों में समान रूप से मान्य होने के कारण सन्धाभाषा तत्कालीन उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य थी।

आठवीं से बारहवीं सदी तक साहित्यिक या केन्द्रीय भाषा के रूप में जो स्थान सन्धाभाषा का रहा, ठीक वही स्थान दसवीं सदी के लगभग हिन्दी को प्राप्त हुआ। राजस्थान की वीरगाथाएँ तथा पूर्वी प्रदेश के सन्तों का साहित्य हिन्दी में ही रचा गया। अतः सन्धाभाषा में हिन्दी का आदि रूप खोजना सर्वथा संगत प्रतीत होता है।

---

१ दे० राहुल सांकृत्यायन : सिद्ध सरहपाद कृत दोहाकोश, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९ , पृ० ८।

२ दे० चटर्जी, सुनीतिकुमार : दि ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमण्ट आव दि *बंगाली लैंग्वेज, कलकत्ता, १९२६, प्रथम भाग, ११८।*

३. दे० महन्ती, आर्त्तवल्लभ : उत्कल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५१ पृ० २।

भापाआ के आकृतिमूलक वर्गीकरण के अनुसार हिन्दी विश्लिष्ट भापा है तथा इसके विपरीत सस्कृत सश्लिष्ट भाषा । स धाभापा के स्वरूप के अध्ययन के प्रसग मे पहले यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि हिन्दी मे जिस विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का विकास दिखाई पडता है उसका आरम्भ सधाभापा मे हो गया था। अत स धाभापा हिन्दी का आदि रूप प्रस्तुत करती है। सश्लिष्ट भाषा क विपरीत विश्लिष्ट भाषा की सबसे बडी विशेपता यह है कि उसके स ना रूपो मे विभक्तिया अलग से जुडी रहती हैं। सन्धाभापा क सज्ञा रूपो के विवचन के प्रसग मे यह दिखाया गया है कि उनके कई रूपो मे विभक्तिया अलग से जुडी रहती है। जस

करि कू[1]

सूण मे इत्यादि।[2]

सश्लिष्ट भाषा से विश्लिष्ट भाषा तक आने की प्रक्रिया मे ध्वनियो मे बहुत सरलता आ जाती है। सधाभापा की ध्वनियो के अध्ययन क प्रकरण मे उदाहरणो के द्वारा यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि स धाभापा की प्रवृत्ति ह्रस्वान्त हो जाती है उसमे सयुक्त स्वरो का प्रचलन कम हो जाता है तथा सधि स्वरों का भी अभाव दिखाई पडता है। सधि स्वरो का अभाव पूर्वी भाषा की अपनी विशेपता है अत स धाभाषा को निस्सन्देह पूर्वी भाषा का रूप कहा जा सकता है। व्यजनो के प्रकरण मे इसका सकेत दिया गया है कि स धाभापा के व्यजन समीकरण के रूप हिन्दी का आदि रूप प्रस्तुत करते है। जस

काय > कज्ज > काज

कम > कम्म > काम इत्यादि।[3]

स धाभापा मे सयुक्त व्यजनो के अभाव तथा क्ष त्र ज्ञ इत्यादि सस्कृत की सयुक्त ध्वनियो के सरल रूपो मे परिवर्तित हो जाने का विवचन व्यजनो के प्रकरण मे किया गया है।

१ द० यह ग्रन्थ (पीछ)
२ द० वही।
३ मिला० कोछड हरिवश अपभ्रश साहित्य, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली पृ० १०।

सन्धाभाषा के संज्ञा रूपों के प्रकरण में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि संस्कृत के विपरीत हिन्दी में लिंगों वचनों तथा कारकों की संख्या में जो न्यूनता दिखाई पड़ती है उसका रूप सन्धाभाषा में स्पष्ट हो गया था। एक ही संज्ञा रूप के भिन्न भिन्न कई रूपों की स्थिति से सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। यह प्रवृत्ति हिन्दी में स्पष्टतर हो जाती है। सर्वनामों के अध्ययन द्वारा भी उपयुक्त तथ्यों की ओर संकेत किया गया है।

विशेषणों के प्रकरण में यह संकेत किया गया है कि संस्कृत में प्रचलित तुलनात्मक विशेषणों की प्रणाली हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है। सन्धाभाषा में तुलनात्मक विशेषणों के अभाव से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें हिन्दी का आदि रूप बहुत अंश में वर्तमान है।

क्रियारूपों के प्रकरण में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि सन्धाभाषा में क्रियारूपों की बनावट अपेक्षाकृत बहुत सरल हो गई थी। संस्कृत के विपरीत सन्धाभाषा के क्रियारूपों में काल के सूक्ष्म भेद नहीं मिलते तथा एक ही क्रियारूप भिन्न भिन्न कालों में प्रयुक्त होते हैं। इससे सन्धाभाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का पता चलता है। इसके अतिरिक्त सन्धाभाषा के क्रियारूपों में कुछ ऐसे प्रयोग उपलब्ध होते हैं, जो हिन्दी के अत्यन्त निकट हैं। जैसे खेलहु बहिअ इत्यादि। साथ ही कुछ पूर्वी भाषाओं के प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे आइल। हिन्दी की भांति सन्धाभाषा में कर्म तथा भाव वाच्यों के रूप कम मिलते हैं। अतः सन्धाभाषा के क्रियारूपों को हिन्दी के क्रियारूपों का आदि रूप कहना सर्वथा संगत प्रतीत होता है।

क्रियाविशेषणों के विवेचन के प्रसंग में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सन्धाभाषा के क्रियाविशेषणों की उत्पत्ति हिन्दी के क्रियाविशेषणों की भांति संज्ञा सर्वनाम तथा प्राचीन क्रियाविशेषणों से हुई है। अतः सन्धाभाषा तथा हिन्दी के क्रियाविशेषणों में उत्पत्ति की दृष्टि से बहुत अधिक समानता मिलती है।

उपसर्गों तथा परसर्गों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्धाभाषा के उपसर्ग तथा प्रत्यय अपने मूल संस्कृत रूप से अलग होने लगे थे तथा हिन्दी के निकट आ रहे थे। संस्कृत का अभाव-सूचक उपसर्ग वि सन्धाभाषा में 'वे' के रूप में मिलता है। यह रूप हिन्दी के अधिक निकट है। परसर्गों में भी गामी तथा धारी इत्यादि रूप संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी के निकट हैं।

अत, सन्धाभाषा की गठन के अध्ययन से उसकी विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति तथा उसमे हिन्दी के रूपों के आभास का परिचय मिलता है। अत, सन्धाभाषा को हिन्दी का आदि रूप कहना सार्थक प्रतीत होता है।

वाक्य रचना के प्रकरण मे मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सन्धाभाषा के वाक्यो का पद क्रम हिन्दी के बहुत निकट है। हिन्दी की भांति सन्धाभाषा मे कर्तृपद तथा क्रियापद के लोप के उदाहरण भी उपलब्ध होते है।

सन्धाभाषा की अर्थगत विशेषता के विवेचन द्वारा यह दिखाया गया है कि सन्धाभाषा का सान्निध्य संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषाओं से अधिक है।[१] इस दृष्टि से भी सन्धाभाषा हिन्दी के निकट प्रतीत होती है।

सन्धाभाषा के छन्दों के सम्बन्ध मे, जैसे हजारीप्रसाद द्विवदी ने कहा है, यह उल्लेखनीय है कि सन्धाभाषा के दोहो तथा पदावलियो की परम्परा अविच्छिन्न रूप से हिन्दी म चली। बँगला मे वह उतनी लोकप्रिय न हो सकी, जितनी हिन्दी मे।[२] अत छन्दो का दृष्टि से भी सन्धाभाषा को हिन्दी का आदि रूप माना जा सकता है।[३]

सन्धाभाषा की ध्वनियां, पदो वाक्यो तथा अर्थगत विशेषताओ का भाषावैज्ञानिक अध्ययन तथा विवेचन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। इस अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सन्धाभाषा म विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का प्रारम्भ हो गया था जिससे आगे चलकर हिन्दी का विकास हुआ। दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि सन्धाभाषा को किसी प्रदेशविशेष की सीमा म नही बाँधा जा सकता। वह अपने समय मे एक केन्द्रीय भाषा थी जिसके निर्माण मे उत्तर भारत के प्रत्येक क्षेत्र की भाषा का पूरा सहयोग था।[४] सन्धाभाषा क बाद यह स्थान हिन्दी को मिला।

१ मिला० पिशेल कम्परेटिव ग्रामर आव दि प्राकृत लैंग्वेजेज, अनुवादक सुभद्र झा, मोतीलाल बनारसी दास, १९५७, पृ० २-३।

२ मिला० द्विवदी, ह० प्र० हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५२ पृ० ६।

सन्धाभाषा के छन्दो के सम्बन्ध म इस ग्रन्थ मे विवेचन नही किया गया है। इसके लिए देखिए इस ग्रन्थ की भूमिका।

४ मिला० मजूमदार, आर० सी०. दि स्ट्रगल फार एम्पायर, भारतीय विद्या भवन बम्बई, मई १९५७ ई०, पृ० ३१९ से सुनीतिकुमार चटर्जी के विचार।

यद्यपि सन्धाभाषा के भाव पक्ष तथा हिन्दी में उसकी परम्परा का अध्ययन इस ग्रन्थ का विषय नहीं है, तथापि कुछ विद्वानों के मतों के उल्लेख द्वारा यह संकेत देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भाव के क्षेत्र में भी सन्धाभाषा हिन्दी का आदि रूप प्रस्तुत करती है। अखिलभारतीय प्राच्य सम्मेलन के मंच से राहुलजी ने इस मत का प्रतिपादन किया कि सिद्धों की कविता की परम्परा ही नाथ-पन्थ से होकर हिन्दी के कबीर, नानक इत्यादि कवियों में विद्यमान है।[1] हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक शुक्लजी भी इस विचार से सहमत हैं कि सिद्धों की साधना नाथ पन्थ से होती हुई हिन्दी के सन्त कवियों में पहुँची।[2] हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि अपने पूर्ववर्ती सिद्धों की साधना को ही युगोचित बनाकर नाथपन्थियों ने अपनाया[3] तथा अपने परवर्ती सन्तों को, भाव के साथ, गुरु शिष्य संवाद की शैली उन्होंने प्रदान की।[4] प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा ने कई अनेक अपभ्रंश-रचना के उदाहरणों द्वारा यह दिखाया है कि अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य की भावधाराएं प्रायः एक ही हैं।[5] डा० रामखेलावन पाण्डेय ने भी सिद्धों,

---

१ दे० राहुल सांकृत्यायन चौरासी सिद्धों का काल प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रॅजैक्शन्स आव दि सेवन्थ आल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स, दिसम्बर १९३३, बड़ौदा, प्रकाशक ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा १९३५, पृ० ६९५-६६।

२ दे० शुक्ल, रामचन्द्र हिन्दी-साहित्य का इतिहास, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण, सं० २००२, पृ० १८।

३ दे० द्विवेदी, ह० प्र० नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, १९५०, पृ० १८८।

४ दे० वही, पृ० १८२ तथा मिला० बड़थ्वाल, पी० द० गोरखबानी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, २००३, पृ० १८६ तथा २२७।

५ दे० शर्मा, जगन्नाथ राय अपभ्रंश-दर्पण, द्वितीय संस्करण, सन् १९५५ ई० पृ० ५५।

नाथपन्थी योगियो तथा हिन्दी के सन्त कवियो को एक ही परम्परा मे माना है।[1] सिद्धो तथा नाथपन्थी योगियो मे परस्पर समानता का एक बहुत बड़ा प्रमाण यह भी है कि उनके नामो की सूचियो मे बहुत-से नाम ऐसे हैं, जो दोनो मे मिलते हैं। जैसे, 'वर्णरत्नाकर' मे दी गई सूची मे गोरखनाथ का भी उल्लेख है।[2]

हिन्दी के निर्गुणिया सन्तो के अतिरिक्त सूफी सन्तो के लिए भी सन्धाभाषा ने पृष्ठभूमि तैयार की है। पद्मावत मे चित्रित रतनसेन का योगी-रूप सिद्ध तथा नाथपन्थी योगियो का ही रूप है।[3] बालनाथ के टीले की चर्चा पद्मावत पर योगियो के प्रभाव का ही परिचायक है।[4] सिद्धो की साधना सूफियों की दाम्पत्य-प्रेमभावना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। जिस प्रकार सिद्धो मे डोम्बी के प्रति प्रदर्शित प्रेम परमात्मा के प्रति प्रेम का प्रतीक है, उसी प्रकार सूफी अपने प्रेम का आलम्बन चाहे जिसे मानें, उनका प्रेम ईश्वरोन्मुख ही होता है।[5] सिद्धो की साधना की पृष्ठभूमि मे सूफियो ने किस प्रकार अपनी साधना की है, इसका विवेचन दासगुप्त ने भी किया है।[6] माधवजी ने सिद्धो की साधना मे मधुर भावना दिखाने का प्रयास किया है,

---

१. पाण्डेय, रामखेलावन : मध्यकालीन सन्त-साहित्य, पटना-विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-ग्रन्थ।

२. दे० ज्योतिरीश्वर : वर्णरत्नाकर, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, कलकत्ता, १९४०, पृ० [illegible]।

३ दे० द्विवेदी, ह० प्र० : नाथ-सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, १९[illegible], पृ० [illegible] तथा मिला० शुक्ल, रामचन्द्र : जायसी ग्रन्थावली, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, तृतीय सस्करण, स० २००३ वि०, पृ० ५३।

४. मिला० शुक्ल, रा० च० : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, वि०, २००३ पृ० ११।

५. मिला०, पाण्डेय, चन्द्रबली : तसव्वुफ अथवा सूफीमत, सरस्वती-मन्दिर, बनारस, १९४८, पृ० १०६।

६. दे० दासगुप्त, शशिभूषण : आब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स, कलकत्ता, १९४६, पृ० ३९९।

परन्तु इस सम्बन्ध मे उनके स्पष्ट विचार नहीं मिलते।[1] यदि विद्वान् लेखक अपने इस मत का कुछ और स्पष्टता से प्रतिपादन कर सकते, तो सिद्धो की परम्परा का सम्बन्ध रामभक्ति शाखा से जोड़ने की दिशा मे एक नया संकेत अवश्य मिलता।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से सिद्धो की सन्धाभाषा हिन्दी का आदि रूप प्रस्तुत करती है।

[•]

१ दे० डॉ० माधव, भुवनेश्वरनाथ मिश्र रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५७, पृ० ४८।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों तथा निबन्धों की सूची

(सहायक ग्रन्थो तथा निबन्धो के प्रकाशन-काल तथा प्रकाशको के नाम ग्रन्थ में यथास्थान सकेतित हैं । अत , निम्नांकित सूची मे उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।)

हिन्दी

(पाठ ग्रन्थ)

१. बागची प्रबोधचन्द्र — दोहाकोश, प्रथम भाग ।
२. वही — दोहाकोश । (जनल ऑव दि डिपार्टमण्ट आव लटस) ।
३ शास्त्री, हरप्रसाद — बौद्धगान ओ दोहा ।
४. साकृत्यायन, राहुल — सिद्ध सरहपाद कृत दोहाकोश ।
५. वही : हिन्दी-काव्यधारा ।
६. सेन, सुकुमार · चर्यागीति, वज्रगीति, प्रहेलिका (इण्डियन लिंगुइस्टिक्स, जिल्द १०) ।

(व्याकरण)

१. गुरु, कामताप्रसाद : हिन्दी-व्याकरण ।
२ विद्यासागर, ईश्वरचन्द्र — सुबोध संस्कृत-व्याकरण कौमुदी, (सम्पादक, रामसुन्दर शर्मा) ।

(कोश)

१. प्रसाद, विश्वनाथ, झा, सुधाकर : भाषाविज्ञान का पारिभाषिक शब्द, पटना, विश्वविद्यालय ।
२. भार्गव : आदर्श हिन्दी-शब्दकोश ।
३. शास्त्री, गणेशदत्त : पद्मचन्द्रकोश ।
४. सेठ, ह० त्रि० : पाइअ-सद्द-महण्णवो ।

(सामान्य ग्रन्थ तथा निबन्ध)

१. अग्रवाल, सरजूप्रसाद — प्राकृत विमर्श ।
२. इन्द्रभूति — ज्ञानसिद्धि (गायकवाड ओरिएण्टल सीरिज, स ४४) ।
३. उपाध्याय, भरत सिंह . पालि साहित्य का इतिहास ।

४ कोछड, हरिवंश	अपभ्रंश साहित्य।
५ खाँ, इशा अल्लाह	रानी केतकी की कहानी।
६ चटर्जी, सुनीतिकुमार	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी।
७ जायसवाल, काशीप्रसाद	एकादश प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का भाषण।
८ जैन हीरालाल	सावयधम्मदोहा।
९ ज्योतिरीश्वर	वर्णरत्नाकर।
१० दामोदर पण्डित	उक्तिव्यक्तिप्रकरण।
११ द्विवेदी हजारीप्रसाद	हिन्दी साहित्य का आदिकाल।
१२ वही	कबीर।
१३ वही	हिन्दी साहित्य की भूमिका।
१४ वही	नाथ सम्प्रदाय।
१५ प्रसाद विश्वनाथ	ष और ख का रागात्मक निरूपण (भारतीय साहित्य, अप्रैल, १९५६)
१६ पाण्डेय, चन्द्रबली	तसव्वुफ अथवा सूफीमत।
१७ बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त	गोरखबानी।
१८ बाहरी हरदेव	प्राकृत और उसका साहित्य।
१९ भट्टाचार्य, विनयतोष	अद्वयवज्रसंग्रह (गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरिज, सं ४०)।
२० भारती, धर्मवीर	सिद्ध साहित्य।
२१ महन्ती, आर्तवल्लभ	[illegible] साहित्य का [illegible] इतिहास।
२२ डॉ० माधव भुवनेश्वरनाथ मि[illegible]	रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना।
२३ रहमान, अब्दुल	सन्देशरासक (सम्पादक हरिवल्लभ भायाणी)।
२४ वर्मा, धीरेन्द्र	हि[illegible] का इतिहास।
२५ वर्मा, रामकुमार	कबीर का रहस्यवाद।
२६. वही	हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
२७ विद्यापति	कीर्तिलता (सम्पादक डॉ० बाबूराम सक्सेना)।
२८ वूल्नर, ए० सी०	प्राकृत प्रवेशिका (अनु० बनारसीदास जैन)।

२९ शर्मा जगन्नाथ राय — अपभ्रंश दर्पण।

३० शुक्ल रामचन्द्र — हिन्दी साहित्य का इतिहास।

३१ वही — जायसी ग्रन्थावली।

३२ सक्सेना, बाबूराम — सामान्य भाषाविज्ञान।

३३ सांकृत्यायन राहुल — पुरातत्त्व निबन्धावली।

३४ वही — चौरासी सिद्ध (सरस्वती जून १९३१ ई०)।

३५ वही — चौरासी सिद्धों का काल। (सातवें अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन की कार्यवाही)।

३६ वही — साहित्यिक अपभ्रंश पुरानी कन्नौजी (दृष्टिकोण मई १९५ ई०)।

३७ सिंह नामवर — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग (साहित्य भवन लि० इलाहाबाद, १९५४ ई०)।

शोध ग्रन्थ

१ तोमर रामसिंह — प्राकृत अपभ्रंश-साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव (प्रयाग विश्वविद्यालय १९५० ई०)।

२ पाण्डेय रामसेवावन — मध्यकालीन सन्त साहित्य पटना विश्वविद्यालय १९५२ ई०।

अँगरेजी

(GRAMMAR)

1 Beams J — A comparative Grammar of the Modern Aryan Languages of India Vol 1 2, 3

2 Hoernle A F R — A Comparative Grammar of the Gaudian Languages

3 Kale M R — A Higher Sanskrit Grammar

4 Kellogg S H — A Grammar of the Hindi Language

5 Pischel, R — Comparative Grammar of the Prakrit Languages Translated from German by Subhadra Jha)

(DICTIONARY)

1 Apte, V S — The Practical Sanskrit English Dictionary

2. Fowler — The Concise Oxford Dictionary of Current English

3 Mansion J E — Harrap s Shorter French & English Dictionary Part one

4 Monier Williams M — A Sanskrit English Dictionary, Oxford 1899

5 Nyantiloka — Buddh st Dictionary

6 Shiplay J T — Dictionary of World Literary Terms

7 Turner R L — A Comparative & Etymological Dictionary of the Nepali Language

(GENERAL BOOKS AND ARTICLES)

1 Bagch[illegible]bodh Chandra — [illegible]dies in the Tantras part I

2 Do — The [illegible]ts in the Buddhist, Dohas [illegible] Indian Linguistics, Vol V Par[illegible] 1 4)

3 Do — The Sandh[illegible]bhasa and Sandha vacana (Indian Historical Quarterly 1930)

4 Banerji Panchcowrie — Some Factors in the Making of Bengal (Vishwabharti Quarterly, Vol II No 3)

5 Bhattacharya Vidhushekhara — Sandhabhasa (Indian Historical Quarterly, 1928)

6 Chatterji Suniti Kumar — The Origin and Development of the Bengali Language,

7	Dasgupta, Shashi Bhusan	*Obscure Rel g ous Cults*
8	Grierson, G A	Linguistic Survey of India Vol V and IX
9	Do	Spontaneous Nasalisation in the Indo Aryan Languages (J R A 1922)
10	Guenther, Herbert V.	Yuganaddha
11	Jayaswal, Kashi Prasad	Presidential Address (Proceedings and Transactions of the 7th All India Oriental Conference Dec 1933)
12	Kakti, Banikant	Assamese Its Format on & Development
13	Kern, H	Saddharma Pundarika, English Traslation (Sacred Book of the East, Vol XXI)
14	Majumdar, R C	The Struggle for Empire
15	Maxmuller, F	The Vagrakkhed ka (Sacred Book of the East, Vol XLIX)
16	Mishra Jayakant	A History of Maithili Literature Vol 1
17	Do	The Language of the Charyapada (Proceedines and Transactions of the thirteenth All India Oriental Conference Oct 1946)
18	Muhandale Madhukar Anant	Historical Grammar of Inscriptional Prakrits Poona 1948
19	Panse Murlidhar Gajanan	Linguistic Peculiarities of Jnanesvari
20	Pischel R	Desinammala of Hemcandra

21	Prasad B N	A Phonaesthetic Aspect of Retroflexion (Indian Linguistics Chatterji Volume)
22	Do	Rise of Hindi (Bihar Through the Ages)
23	Roy Chaudhary, B P	Noun Declension in the Doha kosa (Indian Linguistics Vol VIII)
24	Do	Pronominal Declension in the Dohakosa (Indian Linguistics, Grierson Memorial Number)
25	Saxena Baburam	Evolution of Awadhi
26	Sen Sukumar	Index Verborum of old Bengali Carya Songs & Fragments (Indian Linguistics, Vol IX)
27	Shahidullah, M	Les Chants Mystiques Kanha et de Sarah
28	Shashtri Vidhushekhar	Vedic Interpretation and Tradition (Proceedings and Transactions of the Sixth All India Oriental Conference December 1930
29	Tagare G V	Historical Grammar of Apabhramsa
30	Vaidya [illegible]	[illegible] Prakrit Grammar of Hem